अध्याय ६

सार्वभौम भट्टाचार्य की मुक्ति

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में छठे अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर में प्रविष्ट हुए, तो वे तुरन्त मूर्छित हो गये। तब सार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें अपने घर ले आये। इस बीच सार्वभौम भट्टाचार्य के बहनोई गोपीनाथ आचार्य मुकुन्द दत्त से मिले और उन्होंने उनसे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने तथा जगन्नाथ पुरी की यात्रा करने की चर्चा की। महाप्रभु के मूर्छित होने तथा सार्वभौम भट्टाचार्य के घर ले जाये जाने का समाचार सुनकर लोग महाप्रभु का दर्शन करने के लिए वहाँ उमड़ने लगे। इसके बाद श्रील नित्यानन्द प्रभु तथा अन्य भक्त जगन्नाथ मन्दिर गये और जब वे लोग सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पहुँचे, तब महाप्रभु को बाह्य चेतना लौट आई। सार्वभौम भट्टाचार्य ने हर एक का स्वागत किया और प्रेमपूर्वक महाप्रसाद का वितरण किया। फिर भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु से परिचित हुए और उनके रहने का प्रबन्ध उन्होंने अपनी मौसी के यहाँ कर दिया। उनके बहनोई गोपीनाथ आचार्य ने यह सिद्ध किया कि महाप्रभु साक्षात् कृष्ण हैं, किन्तु सार्वभौम तथा उनके अनेक शिष्य इसका स्वीकार कर सके। फिर भी गोपीनाथ आचार्य ने सार्वभौम को विश्वास दिलाया कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा बिना उन्हें कोई नहीं समझ सकता। उन्होंने शास्त्रों के उद्धरण देकर सिद्ध किया कि श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् कृष्ण हैं। इतने पर भी सार्वभौम ने उनके कथनों को गम्भीरतापूर्वक नहीं लिये। ये सारे तर्क सुनकर चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों से कहा कि सार्वभौम मेरे गुरु हैं और वे स्नेहवश जो कुछ भी कह रहे हैं वह सबके लाभ के लिए है।

जब सार्वभौम श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले, तो उन्होंने कहा कि वे उन्हें वेदान्त दर्शन सुनाना चाहते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह प्रस्ताव मान लिया और सार्वभौम उन्हें लगातार सात दिनों तक वेदान्त दर्शन की व्याख्या सुनाते रहे, किन्तु महाप्रभु मौन बने रहे। उनको मौन देखकर भट्टाचार्य ने पूछा कि क्या वे वेदान्त दर्शन समझ रहे हैं या नहीं? इस पर महाप्रभु ने उत्तर दिया, "हे महाशय, मैं वेदान्त-दर्शन को तो स्पष्ट रूप से समझ सकता हूँ, किन्तु मैं आपकी व्याख्याएँ नहीं समझ पा रहा। इस पर भट्टाचार्य तथा महाप्रभु के बीच उपनिषदों और वेदान्त सूत्र के प्रमाणों को लेकर शास्त्रार्थ हुआ। भट्टाचार्य निर्विशेषवादी थे, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने सिद्ध किया कि परम सत्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। उन्होंने सिद्ध किया कि निर्विशेष परम सत्य के विषय में मायावादी दार्शनिकों की जो धारणाएँ हैं, वे गलत हैं।

परम सत्य न तो निर्विशेष हैं न शक्ति से रहित हैं। मायावादी दार्शनिकों की सबसे बड़ी भूल यह है कि वे परम सत्य को निर्विशेष तथा शक्तिविहीन मानते हैं। समस्त वेदों में परम सत्य की असीम शक्तियों को स्वीकार किया गया है। यह भी स्वीकार किया गया है कि परम सत्य को अपना दिव्य, आनन्दमय तथा शाश्वत स्वरूप है। वेदों के अनुसार भगवान् तथा जीव दोनों गुणों में समान हैं, किन्तु इन गुणों की मात्रा भिन्न-भिन्न है। परम सत्य का वास्तविक दर्शन बतलाता है कि भगवान् तथा उनकी सृष्टि अचिन्त्य रूप से एक हैं एवं साथ ही साथ भिन्न भी हैं। निष्कर्ष यह है कि मायावादी दार्शनिक वास्तव में नास्तिक हैं। इस विषय को लेकर दोनों में पर्याप्त चर्चा हुई, किन्तु समस्त प्रयत्नों के बाद भी अन्त में भट्टाचार्य हार गये।

तब सार्वभौम भट्टाचार्य के अनुरोध पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने *श्रीमद्भागवत* के *आत्माराम* श्लोक की १८ प्रकार से व्याख्या की। जब भट्टाचार्य का होश ठिकाने आया, तो महाप्रभु ने अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट किया। इस पर भट्टाचार्य ने महाप्रभु की प्रशंसा में १०० श्लोक सुनाये और उन्हें नमस्कार किया। इसके बाद गोपीनाथ आचार्य तथा अन्य लोग महाप्रभु की अद्भुत शक्ति देखकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुए।

इस घटना के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु के पास एक दिन प्रातःकाल

जगन्नाथजी से कुछ प्रसाद आया, जिसे उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य को दिया। सार्वभौम ने यह महाप्रसाद बिना किसी औपचारिकता के तुरन्त ग्रहण कर लिया। एक अन्य दिन जब सार्वभौम ने श्री चैतन्य महाप्रभु से पूजा तथा ध्यान करने की सर्वोत्तम विधि पूछी, तो महाप्रभु ने उन्हें हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने का उपदेश दिया। किसी अन्य दिन सार्वभौम ने *तत्तेऽनुकम्पाम्* श्लोक को इसलिए बदलना चाहा, क्योंकि उन्हें इसका *मुक्तिपद* शब्द उचित नहीं लगा। उसके स्थान पर वे *भक्तिपद* करना चाह रहे थे। किन्तु महाप्रभु ने मना किया कि *श्रीमद्भागवत* के इस श्लोक को न बदला जाय, क्योंकि *मुक्तिपद* पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के चरणकमलों का द्योतक है। शुद्ध भक्त बन जाने के बाद सार्वभौम ने कहा, "चूँकि अर्थ अस्पष्ट है, अतएव अब भी मुझे भक्तिपद अधिक पसन्द है।" इस पर श्री चैतन्य महाप्रभु तथा जगन्नाथ पुरी के अन्य निवासी अत्यधिक प्रसन्न हुए। इस तरह सार्वभौम भट्टाचार्य शुद्ध वैष्णव बन गये और वहाँ के अन्य विद्वानों ने भी उनका अनुसरण किया।

नौमि तं गौरचन्द्रं यः कुतर्क-कर्कशाशयम् ।
सार्वभौमं सर्व-भूमा भक्ति-भूमानमाचरत् ॥१॥

नौमि तं गौरचन्द्रं यः कुतर्क-कर्कशाशयम् ।
सार्वभौमं सर्व-भूमा भक्ति-भूमानमाचरत् ॥ १ ॥

नौमि—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; **तम्**—उनको; **गौरचन्द्रम्**—जो भगवान् गौरचन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हैं; **यः**—जिन्होंने; **कु-तर्क**—कुतर्क; **कर्कश-आशयम्**—जिसका हृदय कठोर था; **सार्वभौमम्**—सार्वभौम भट्टाचार्य को; **सर्व-भूमा**—प्रत्येक के स्वामी; **भक्ति-भूमानम्**—महान् भक्त; **आचरत्**—परिवर्तित कर दिया।

अनुवाद

मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गौरचन्द्र को सादर नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने सारे कुतर्कों के आगार, कठोर हृदय वाले सार्वभौम भट्टाचार्य को महान् भक्त में बदल दिया।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥२॥

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ २॥

जय जय गौरचन्द्र—भगवान् गौरहरि (चैतन्य महाप्रभु) की जय हो; **जय नित्यानन्द**—नित्यानन्द प्रभु की जय हो; **जय अद्वैत-चन्द्र**—अद्वैत आचार्य की जय हो; **जय गौर-भक्त-वृन्द**—श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो!

आवेशे चलिला प्रभु जगन्नाथ-मन्दिरे ।
जगन्नाथ देखि' प्रेमे हइला अस्थिरे ॥ ३॥
आवेशे चलिला प्रभु जगन्नाथ-मन्दिरे ।
जगन्नाथ देखि' प्रेमे हइला अस्थिरे ॥ ३॥

आवेशे—आवेश में; **चलिला**—चले गये; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **जगन्नाथ-मन्दिरे**—जगन्नाथ मन्दिर को; **जगन्नाथ देखि'**—जगन्नाथ का विग्रह देखकर; **प्रेमे**—प्रेमावेश में; **हइला**—हो गये; **अस्थिरे**—व्याकुल।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में आठारनाला से जगन्नाथ मन्दिर गये। वहाँ जगन्नाथ भगवान् का दर्शन करके वे भगवत्प्रेमवश अत्यन्त व्याकुल हो उठे।

जगन्नाथ आलिङ्गिते चलिला धाञा ।
मन्दिरे पड़िला प्रेमे आविष्ट हञा ॥ ४॥
जगन्नाथ आलिङ्गिते चलिला धाञा ।
मन्दिरे पड़िला प्रेमे आविष्ट हञा ॥ ४॥

जगन्नाथ—भगवान् जगन्नाथ का; **आलिङ्गिते**—आलिंगन करने के लिए; **चलिला**—चले; **धाञा**—बड़ी तेजी से; **मन्दिरे**—मन्दिर में; **पड़िला**—गिर गये; **प्रेमे**—प्रेमावेश में; **आविष्ट**—विह्वल; **हञा**—होकर।

अनुवाद

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु तेजी से भगवान् जगन्नाथ का आलिंगन करने गये, किन्तु मन्दिर में प्रवेश करने के बाद वे भगवत्प्रेम में इतने विभोर हो गये कि वे भूमि पर मूर्छित होकर गिर पड़े।

दैवे सार्वभौम ताँहाके करे दरशन ।
पड़िछा मारिते तेंहो कैल निवारण ॥५॥

दैवे सार्वभौम ताँहाके करे दरशन ।
पड़िछा मारिते तेंहो कैल निवारण ॥५॥

दैवे—दैव वश; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **ताँहाके**—उनके; **करे**—करते हैं; **दरशन**—दर्शन; **पड़िछा**—मन्दिर का चौकीदार; **मारिते**—मारना; **तेंहो**—वह; **कैल**—किया; **निवारण**—रोका।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु गिर पड़े, तब दैववश सार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें देख लिया। जब सुरक्षाकर्मी ने महाप्रभु को मारने की धमकी दी, तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने तुरन्त उसे मना कर दिया।

प्रभुर सौन्दर्य आर प्रेमेर विकार ।
देखि' सार्वभौम हैला विस्मित अपार ॥६॥

प्रभुर सौन्दर्य्य आर प्रेमेर विकार ।
देखि' सार्वभौम हैला विस्मित अपार ॥६॥

प्रभुर—चैतन्य महाप्रभु का; **सौन्दर्य्य**—सौन्दर्य; **आर**—और; **प्रेमेर विकार**—प्रेम के विकार; **देखि'**—देखकर; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **हैला**—हो गये; **विस्मित**—चकित; **अपार**—अत्यन्त।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की सुन्दरता तथा भगवत्प्रेम के कारण उनके शरीर में उत्पन्न दिव्य विकारों को देखकर सार्वभौम भट्टाचार्य को अत्यधिक आश्चर्य हुआ।

বহু-ক্ষণে চৈতন্য নহে, ভোগের কাল হৈল ।
সার্বভৌম মনে তবে উপায় চিন্তিল ॥৭॥

बहु-क्षणे चैतन्य नहे, भोगेर काल हैल ।
सार्वभौम मने तबे उपाय चिन्तिल ॥७॥

बहु-क्षणे—काफी समय तक; **चैतन्य**—चेतना; **नहे**—नहीं रही; **भोगेर**—भोग लगाने का; **काल**—समय; **हैल**—हो गया; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **मने**—मन में; **तबे**—उस समय; **उपाय**—उपाय; **चिन्तिल**—सोचने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अधिक समय तक अचेतन पड़े रहे। तभी भगवान् जगन्नाथ को भोग लगाने का समय हो गया और भट्टाचार्य कुछ उपाय सोचने लगे।

শিষ্য পড়িছা-দ্বারা প্রভু নিল বহাঞা ।
ঘরে আনি' পবিত্র স্থানে রাখিল শোয়াঞা ॥৮॥

शिष्य पड़िछा-द्वारा प्रभु निल वहाञा ।
घरे आनि' पवित्र स्थाने राखिल शोयाञा ॥८॥

शिष्य—शिष्यगण; **पड़िछा**—और चौकीदार; **द्वारा**—द्वारा; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **निल**—लेकर; **वहाञा**—उठाकर; **घरे**—घर पर; **आनि'**—लाकर; **पवित्र**—पवित्र; **स्थाने**—स्थान पर; **राखिल**—रखा; **शोयाञा**—लिटाकर।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य सुरक्षाकर्मी तथा कुछ शिष्यों की सहायता से श्री चैतन्य महाप्रभु को अचेत अवस्था में ही अपने घर ले आये और उन्हें एक अत्यन्त पवित्र स्थान में लिटा दिया।

तात्पर्य

उस समय सार्वभौम भट्टाचार्य जगन्नाथ मन्दिर की दक्षिण दिशा में रहते थे। उनका घर समुद्र-तट पर था, जो मार्कण्डेय सरस्तट कहलाता था। आजकल इसका प्रयोग गंगामाता के मठ के रूप में हो रहा है।

श्वास-प्रश्वास नाहि उदर-स्पन्दन ।
देखिया चिन्तित हैल भट्टाचार्यर मन ॥९॥

श्वास-प्रश्वास नाहि उदर-स्पन्दन ।
देखिया चिन्तित हैल भट्टाचार्य्यर मन ॥ ९ ॥

श्वास-प्रश्वास—श्वास लेना; **नाहि**—नहीं था; **उदर**—पेट में; **स्पन्दन**—हिलना डुलना; **देखिया**—देखकर; **चिन्तित**—चिन्तायुक्त; **हैल**—हो गया; **भट्टाचार्य्यर**—सार्वभौम भट्टाचार्य का; **मन**—मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर की परीक्षा करने पर सार्वभौम ने देखा कि न तो उनका उदर गति कर रहा है न ही वे श्वास ले रहे हैं। उनकी यह दशा देखकर भट्टाचार्य अत्यन्त चिन्तित हो उठे।

सूक्ष्म तुला आनि' नासा-अग्रेते धरिल ।
ईषच्चलये तुला देखि' धैर्य हैल ॥१०॥

सूक्ष्म तुला आनि' नासा-अग्रेते धरिल ।
ईषत चलये तुला देखि' धैर्य्य हैल ॥ १० ॥

सूक्ष्म—सूक्ष्म; **तुला**—कपास; **आनि'**—लाकर; **नासा**—नासिका के; **अग्रेते**—आगे; **धरिल**—रखी; **ईषत्**—थोड़ी सी; **चलये**—हिलती है; **तुला**—कपास; **देखि'**—देखकर; **धैर्य्य**—धैर्य; **हैल**—आया।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने बारीक रुई का फोहा लिया और उसे महाप्रभु के नासिका के सामने रखा। जब उन्होंने देखा कि रुई कुछ-कुछ हिल रही है, तो उन्हें कुछ आशा बँधी।

वसि' भट्टाचार्य मने करेन विचार ।
एइ कृष्ण-महाप्रेमेर सात्त्विक विकार ॥११॥

वसि' भट्टाचार्य्य मने करेन विचार ।
एइ कृष्ण-महाप्रेमेर सात्त्विक विकार ॥ ११ ॥

वसि'—बैठकर; **भट्टाचार्य्र**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **मने**—अपने मन में; **करेन**—करते हैं; **विचार**—विचार; **एइ**—यह; **कृष्ण-महा-प्रेमेर**—कृष्ण के लिए प्रेम का; **सात्त्विक**—सात्त्विक; **विकार**—विकार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के पास बैठकर उन्होंने सोचा, "यह दिव्य ऊर्मिपूर्ण परिवर्तन (सात्त्विक विकार) कृष्ण-प्रेम के कारण हुआ है।"

'सूदीप्त सात्त्विक' एई नाम ये 'प्रलय' ।
नित्य-सिद्ध भक्ते से 'सूदीप्त भाव' हय ॥१२॥

'सूद्दीप्त सात्त्विक' एइ नाम ग्रे 'प्रलय' ।
नित्य-सिद्ध भक्ते से 'सूद्दीप्त भाव' हय ॥१२॥

सु-उद्दीप्त सात्त्विक—सुद्दीप्त सात्त्विक; **एइ**—यह; **नाम**—नाम वाला; **ग्रे**—जो; **प्रलय**—प्रलय; **नित्य-सिद्ध**—नित्य रूप से परिपूर्ण सिद्ध; **भक्ते**—भक्त में; **से**—वह; **सु-उद्दीप्त भाव**—सूद्दीप्त भावावेश; **हय**—प्रकट होता है।

अनुवाद

सूद्दीप्त सात्त्विक के लक्षण देखकर सार्वभौम भट्टाचार्य को समझते देर न लगी कि चैतन्य महाप्रभु के शरीर में दिव्य भावावेश (सूद्दीप्त भाव) हुआ है। ऐसा लक्षण केवल नित्यसिद्ध भक्तों के शरीरों में ही दिखा करता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने *सूद्दीप्त सात्त्विक* की विवेचना इस प्रकार की है : "भक्तिरसामृत सिन्धु में उन्नत भक्तों के शरीर में प्रकट होने वाले आठ प्रकार के दिव्य विकारों का उल्लेख हुआ है। कभी-कभी भक्तगण इनके प्रकट होने को रोक देते हैं, जिसकी दो अवस्थाएँ होती हैं— *धूमायिता* तथा *ज्वलिता। धूमायिता* (धूमिल) अवस्था वह है, जिसमें एक या दो विकारों के सूक्ष्म मात्रा में होने के कारण उन्हें छिपाया जा सकता है। जब दो या तीन से अधिक दिव्य विकार उपस्थित हों, तो भी उन्हें छिपा सकना सम्भव है, किन्तु बड़ी कठिनाई से। इसे *ज्वलिता* (ज्वलित) अवस्था कहा जाता है। जब चार या पाँच विकार एकसाथ उपस्थित हों, तो उसे *दीप्त* (प्रदीप्त) अवस्था कहते

हैं। पाँच, छः या सभी आठों विकारों के एकसाथ उपस्थित होने पर *उद्दीप्त* (प्रज्ज्वलित) अवस्था प्राप्त होती है। जब आठों विकार हजार गुना बढ़कर एकसाथ प्रकट हों, तो भक्त *सूद्दीप्त* (अत्यन्त प्रज्ज्वलित) अवस्था में होता है। *नित्यसिद्ध भक्त* का अर्थ है भगवान् के शाश्वत मुक्त पार्षद। ऐसे भक्त भगवान् की संगति का आनन्द चार सम्बन्धों में—दास्य, साख्य, वात्सल्य या माधुर्य के रूप में लूटते हैं।"

'अधिरूढ़ भाव' याँर, ताँर ए विकार ।
मनुष्यर देहे देखि,—बड़ चमत्कार ॥ १३॥
'अधिरूढ़ भाव' य्राँर, ताँर ए विकार ।
मनुष्येर देहे देखि,—बड़ चमत्कार ॥ १३॥

अधिरूढ़ भाव—अधिरूढ नामक भावावेश; **य्राँर**—जिसका; **ताँर**—उनका; **ए**—यह; **विकार**—विकार; **मनुष्येर**—मनुष्य की; **देहे**—देह में; **देखि**—मैं देखता हूँ; **बड़ चमत्कार**—अत्यन्त आश्चर्यजनक।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने विचार किया, "श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में अधिरूढ भाव के असाधारण दिव्य लक्षण प्रकट हो रहे हैं। यह बड़ा आश्चर्यजनक है! भला मनुष्य के शरीर में ये किस तरह सम्भव हैं?"

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी ने *उज्ज्वल नीलमणि* में *अधिरूढ भाव* या *अधिरूढ महाभाव* की व्याख्या दी है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर रूप गोस्वामी का यह उद्धरण देते हैं, *"आश्रय* (भक्त) की प्रेमानुभूति *विषय* (भगवान्) के प्रति इतनी भावपूर्ण हो उठती है कि प्रेमी का साहचर्य भोगने के बाद भी भक्त को यह आनन्द अपर्याप्त लगता है। ऐसी अवस्था में प्रेमी अपने प्रेम के पात्र को विभिन्न तरीकों से देखता है। भाव का ऐसा विकास *अनुराग* कहलाता है। जब *अनुराग* पराकाष्ठा को प्राप्त करके शरीर में दृष्टिगोचर होने लगता है, तो यह *भाव* कहलाता है। जब शारीरिक लक्षण इतने स्पष्ट नहीं होते, तब भी यह भावदशा *अनुराग* ही कहलाती है, *भाव* नहीं। भावोल्लास प्रगाढ़ अवस्था में

महाभाव कहलाता है। *महाभाव* के लक्षण गोपियों जैसी नित्य पार्षदों के शरीरों में ही दृष्टिगोचर होते हैं।"

এত চিন্তি' ভট্টাচার্য আছেন বসিয়া ।
নিত্যানন্দাদি সিংহ-দ্বারে মিলিল আসিয়া ॥১৪॥

एत चिन्ति' भट्टाचार्य्य आछेन वसिया ।
नित्यानन्दादि सिंह-द्वारे मिलिल आसिया ॥ १४॥

एत चिन्ति'—ऐसा सोचकर; **भट्टाचार्य्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **आछेन**—थे; **वसिया**—बैठे; **नित्यानन्द-आदि**—नित्यानन्द प्रभु आदि सभी भक्त; **सिंह-द्वारे**—जगन्नाथ मन्दिर के प्रवेश द्वार पर; **मिलिल**—मिले; **आसिया**—आकर।

अनुवाद

जब भट्टाचार्य अपने घर में इस प्रकार विचार कर रहे थे, तब नित्यानन्द प्रभु समेत चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्त मन्दिर के सिंह-द्वार (प्रवेश-द्वार) के निकट पहुँचे।

তাঁহা শুনে লোকে কহে অন্যোন্যে বাৎ ।
এক সন্ন্যাসী আসি' দেখি' জগন্নাথ ॥১৫॥

ताँहा शुने लोके कहे अन्योन्ये बात् ।
एक सन्न्यासी आसि' देखि' जगन्नाथ ॥ १५ ॥

ताँहा—उस स्थान पर; **शुने**—उन्होंने सुना; **लोके**—सामान्य जनता को; **कहे**—बातें करते; **अन्योन्ये**—आपस में; **बात्**—बातें; **एक**—एक; **सन्न्यासी**—संन्यासी; **आसि'**—वहाँ आकर; **देखि'**—देखकर; **जगन्नाथ**—भगवान् जगन्नाथ के अर्चाविग्रह को।

अनुवाद

वहाँ पर इन भक्तों ने लोगों को एक संन्यासी के बारे में बातें करते सुना, जो जगन्नाथ पुरी आया था और जिसने जगन्नाथ विग्रह के दर्शन किये थे।

মূর্চ্ছিত হৈল, চেতন না হয় শরীরে ।
সার্বভৌম লঞা গেলা আপনার ঘরে ॥১৬॥

मूर्च्छित हैल, चेतन ना हय शरीरे ।
सार्वभौम लञा गेला आपनार घरे ॥ १६ ॥

मूर्च्छित—मूर्च्छित; **हैल**—हो गया; **चेतन**—चेतना; **ना**—नहीं; **हय**—है; **शरीरे**—उसके शरीर में; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **लञा**—उसको लेकर; **गेला**—चले गये; **आपनार**—अपने; **घरे**—घर को।

अनुवाद

लोग कह रहे थे कि वह संन्यासी जगन्नाथ के विग्रह का दर्शन करने पर मूर्छित हो गया। चूँकि उसको होश नहीं आया, इसलिए सार्वभौम भट्टाचार्य उसे अपने घर ले गये।

শুনি' সবে জানিলা এই মহাপ্রভুর কার্য ।
হেন-কালে আইলা তাহাঁ গোপীনাথাচার্য ॥ ১৭ ॥

शुनि' सबे जानिला एइ महाप्रभुर कार्य्य ।
हेन-काले आइला ताहाँ गोपीनाथाचार्य्य ॥ १७ ॥

शुनि'—यह सुनकर; **सबे**—सभी भक्त; **जानिला**—समझ गये; **एइ**—यह; **महाप्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु का; **कार्य्य**—कार्य; **हेन-काले**—उस समय; **आइला**—आये; **ताहाँ**—वहाँ; **गोपीनाथ-आचार्य्य**—गोपीनाथ आचार्य।

अनुवाद

यह सुनकर भक्तगण समझ गये कि वे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के बारे में बातें कर रहे हैं। तभी श्री गोपीनाथ आचार्य वहाँ आये।

নদীয়া-নিবাসী, বিশারদের জামাতা ।
মহাপ্রভুর ভক্ত তেঁহো প্রভু-তত্ত্ব-জ্ঞাতা ॥ ১৮ ॥

नदीया-निवासी, विशारदेर जामाता ।
महाप्रभुर भक्त तेंहो प्रभु-तत्त्व-ज्ञाता ॥ १८ ॥

नदीया-निवासी—नदिया के निवासी; **विशारदेर**—विशारद का; **जामाता**—दामाद; **महाप्रभुर भक्त**—चैतन्य महाप्रभु के भक्त; **तेंहो**—वे; **प्रभु-तत्त्व-ज्ञाता**—चैतन्य महाप्रभु की वास्तविक पहचान को जाननेवाले।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य नदिया के निवासी, विशारद के दामाद तथा चैतन्य महाप्रभु के भक्त थे। वे महाप्रभु की वास्तविक पहचान को जानते थे।

तात्पर्य

महेश्वर विशारद नीलाम्बर चक्रवर्ती के सहपाठी थे। वे नदिया जिले के विद्यानगर ग्राम के रहने वाले थे और उनके दो पुत्र थे—मधुसूदन वाचस्पति तथा वासुदेव सार्वभौम। उनके दामाद गोपीनाथ आचार्य थे।

मुकुन्द-सहित पूर्वे आछे परिचय ।
मुकुन्द देखिया ताँर हइल विस्मय ॥ १९॥

मुकुन्द-सहित पूर्वे आछे परिचय ।
मुकुन्द देखिया ताँर हइल विस्मय ॥ १९॥

मुकुन्द-सहित—मुकुन्द दत्त के साथ; **पूर्वे**—पहले; **आछे**—था; **परिचय**—परिचय; **मुकुन्द**—मुकुन्द दत्त; **देखिया**—देखकर; **ताँर**—उनको (गोपीनाथ आचार्य को); **हइल**—था; **विस्मय**—आश्चर्य।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य पहले से मुकुन्द दत्त को जानते थे; अतएव जब उन्होंने मुकुन्द दत्त को जगन्नाथ पुरी में देखा, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

मुकुन्द ताँहारे देखि' कैल नमस्कार ।
तेंहो आलिङ्गिया पुछे प्रभुर समाचार ॥ २०॥

मुकुन्द ताँहारे देखि' कैल नमस्कार ।
तेंहो आलिङ्गिया पुछे प्रभुर समाचार ॥ २०॥

मुकुन्द—मुकुन्द दत्त; **ताँहारे**—उनको; **देखि'**—देखकर; **कैल**—किया; **नमस्कार**—नमस्कार; **तेंहो**—वे; **आलिङ्गिया**—आलिंगन करके; **पुछे**—पूछते हैं; **प्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु का; **समाचार**—समाचार।

अनुवाद

जब मुकुन्द दत्त गोपीनाथ आचार्य से मिलें, तो उन्होंने उन्हें नमस्कार

किया। उनका आलिंगन करने के बाद गोपीनाथ आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में पूछा।

मुकुन्द कहे,——प्रभुर इहाँ हैल आगमने ।
आमि-सब आसियाछि महाप्रभुर सने ॥२१॥

मुकुन्द कहे,——प्रभुर इहाँ हैल आगमने ।
आमि-सब आसियाछि महाप्रभुर सने ॥ २१ ॥

मुकुन्द कहे—मुकुन्द ने कहा; **प्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु का; **इहाँ**—यहाँ; **हैल**—हुआ है; **आगमने**—आगमन; **आमि-सब**—हम सब; **आसियाछि**—आ गये हैं; **महाप्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु के; **सने**—साथ।

अनुवाद

मुकुन्द दत्त ने उत्तर दिया, "महाप्रभु तो पहले ही यहाँ आ चुके हैं। हम उन्हीं के साथ आये हैं।"

नित्यानन्द-गोसाञिके आचार्य कैल नमस्कार ।
सबे मेलि' पुछे प्रभुर वार्ता बार बार ॥२२॥

नित्यानन्द-गोसाञिके आचार्य्र कैल नमस्कार ।
सबे मेलि' पुछे प्रभुर वार्ता बार बार ॥ २२ ॥

नित्यानन्द-गोसाञिके—नित्यानन्द प्रभु को; **आचार्य्र**—गोपीनाथ आचार्य; **कैल नमस्कार**—नमस्कार किया; **सबे मेलि'**—उन सबको मिलकर; **पुछे**—पूछते हैं; **प्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु का; **वार्ता**—समाचार; **बार बार**—बार बार।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने श्री नित्यानन्द प्रभु को देखते ही उन्हें प्रणाम किया। इस तरह सभी भक्तों से मिलकर उन्होंने बारम्बार श्री चैतन्य महाप्रभु का समाचार पूछा।

मुकुन्द कहे,——'महाप्रभु सन्न्यास करिया ।
नीलाचले आइला सङ्गे आमा-सबा लञा ॥२३॥

मुकुन्द कहे,—'महाप्रभु सन्यास करिया ।
नीलाचले आइला सङ्गे आमा-सबा लञा ॥ २३ ॥

मुकुन्द कहे—मुकुन्द दत्त ने कहा; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **सन्यास करिया**—संन्यास लेने के बाद; **नीलाचले**—जगन्नाथ पुरी को; **आइला**—आये हैं; **सङ्गे**—अपने साथ; **आमा-सबा**—हम सबको; **लञा**—लेकर।

अनुवाद

मुकुन्द दत्त ने आगे कहा, "संन्यास लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी आये हैं और हम सबको अपने साथ लाये हैं।

আমা-সবা ছাড়ি' আগে গেলা দরশনে ।
আমি-সব পাছে আইলাঁ তাঁর অন্বেষণে ॥২৪॥

आमा-सबा छाड़ि' आगे गेला दरशने ।
आमि-सब पाछे आइलाँ ताँर अन्वेषणे ॥ २४ ॥

आमा-सबा—हम सबको; **छाड़ि'**—छोड़कर; **आगे**—आगे; **गेला**—गये; **दरशने**—भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करने हेतु; **आमि-सब**—हम सब; **पाछे**—पीछे; **आइलाँ**—आये; **ताँर**—उनकी; **अन्वेषणे**—तलाश में।

अनुवाद

"महाप्रभु हमारा साथ छोड़कर आगे-आगे भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने चले आये। हम सब अभी आये हैं और अब उन्हीं की खोज में हैं।

অন্যোন্যে লোকের মুখে যে কথা শুনিল ।
সার্বভৌম-গৃহে প্রভু,—অনুমান কৈল ॥২৫॥

अन्योन्ये लोकेर मुखे ये कथा शुनिल ।
सार्वभौम-गृहे प्रभु,—अनुमान कैल ॥ २५ ॥

अन्योन्ये—आपस में; **लोकेर**—सामान्य लोगों के; **मुखे**—मुख से; **ये**—वह जो; **कथा**—बातचीत; **शुनिल**—सुनी थी; **सार्वभौम-गृहे**—सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर; **प्रभु**—महाप्रभु; **अनुमान**—अनुमान; **कैल**—लगाया।

अनुवाद

"सब लोगों की बातों से हमने अनुमान लगाया है कि महाप्रभु अब सार्वभौम भट्टाचार्य के घर में हैं।

ঈশ্বর-দর্শনে প্রভু প্রেমে অচেতন ।
সার্বভৌম লঞা গেলা আপন-ভবন ॥২৬॥

ईश्वर-दर्शने प्रभु प्रेमे अचेतन ।
सार्वभौम लञा गेला आपन-भवन ॥ २६ ॥

ईश्वर-दर्शने—भगवान् जगन्नाथ के दर्शन से; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **प्रेमे**—भगवत्प्रेम के भावावेश में; **अचेतन**—अचेतन; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **लञा गेला**—ले गये हैं; **आपन-भवन**—अपने घर पर।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करके भावविभोर हो गये और अचेत हो गये और सार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें उसी अवस्था में अपने घर ले गये हैं।

তোমার মিলনে যবে আমার হৈল মন ।
দৈবে সেই ক্ষণে পাইলুঁ তোমার দরশন ॥২৭॥

तोमार मिलने यबे आमार हैल मन ।
दैवे सेइ क्षणे पाइलुँ तोमार दरशन ॥ २७॥

तोमार—आपसे; **मिलने**—मिलने के लिए; **यबे**—जब; **आमार**—मेरा; **हैल**—था; **मन**—मन; **दैवे**—अचानक; **सेइ क्षणे**—उसी क्षण; **पाइलुँ**—मिला; **तोमार**—आपका; **दरशन**—मिलन।

अनुवाद

"जब मैं आपसे मिलने की सोच रहा था, अकस्मात् हमारी भेंट संयोग से हो गई।

চল, সবে যাই সার্বভৌমের ভবন ।
প্রভু দেখি' পাছে করিব ঈশ্বর দর্শন' ॥২৮॥

चल, सबे ग्राइ सार्वभौमेर भवन ।
प्रभु देखि' पाछे करिब ईश्वर दर्शन' ॥ २८ ॥

चल—आओ चलें; **सबे**—सब; **ग्राइ**—हम जायेंगे; **सार्वभौमेर भवन**—सार्वभौम के घर में; **प्रभु देखि'**—चैतन्य महाप्रभु को मिलने के बाद; **पाछे**—बाद में; **करिब**—करेंगे; **ईश्वर दर्शन**—भगवान् जगन्नाथ के दर्शन।

अनुवाद

"चलिये, पहले सार्वभौम भट्टाचार्य के घर चलकर श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करें। बाद में हम भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने आयेंगे।"

এত শুনি' গোপীনাথ সবারে লঞা ।
সার্বভৌম-ঘরে গেলা হরষিত হঞা ॥ ২৯ ॥

एत शुनि' गोपीनाथ सबारे लञा ।
सार्वभौम-घरे गेला हरषित हञा ॥ २९ ॥

एत शुनि'—यह सुनकर; **गोपीनाथ**—गोपीनाथ आचार्य; **सबारे**—उन सबको; **लञा**—अपने साथ लेकर; **सार्वभौम-घरे**—सार्वभौम भट्टाचार्य के घर के; **गेला**—गये; **हरषित हञा**—अत्यन्त प्रसन्न होकर।

अनुवाद

यह सुनकर हर्षित मन से गोपीनाथ आचार्य तुरन्त सभी भक्तों को साथ लेकर सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पहुँचे।

সার্বভৌম-স্থানে গিয়া প্রভুকে দেখিল ।
প্রভু দেখি' আচার্যের দুঃখ-হর্ষ হৈল ॥ ৩০ ॥

सार्वभौम-स्थाने गिया प्रभुके देखिल ।
प्रभु देखि' आचार्यैर दुःख-हर्ष हैल ॥ ३० ॥

सार्वभौम-स्थाने—सार्वभौम भट्टाचार्य के घर; **गिया**—जाकर; **प्रभुके**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **देखिल**—सबने देखा; **प्रभु देखि'**—महाप्रभु को देखकर; **आचार्यैर**—श्री गोपीनाथ आचार्य को; **दुःख**—दुःख; **हर्ष**—हर्ष; **हैल**—हुआ।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के घर जाकर सबने देखा कि महाप्रभु

अचेतावस्था में हैं। उन्हें इस अवस्था में देखकर गोपीनाथ आचार्य अत्यन्त दुःखी हुए, किन्तु साथ ही प्रसन्न थे कि उन्हें महाप्रभु का दर्शन मिल रहा है।

सार्वभौमे जानाञा सबा निल अभ्यन्तरे ।
नित्यानन्द-गोसाञिरे तेँहो कैल नमस्कारे ॥ ३१ ॥

सार्वभौमे जानाञा सबा निल अभ्यन्तरे ।
नित्यानन्द-गोसाञिरे तेंहो कैल नमस्कारे ॥ ३१ ॥

सार्वभौमे—सार्वभौम भट्टाचार्य; **जानाञा**—सूचित करके और आज्ञा लेकर; **सबा**—सभी भक्त; **निल**—लिया; **अभ्यन्तरे**—घर के भीतर; **नित्यानन्द-गोसाञिरे**—नित्यानन्द प्रभु को; **तेंहो**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **कैल**—किया; **नमस्कारे**—नमस्कार।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने सभी भक्तों को घर के भीतर आने दिया और नित्यानन्द प्रभु को देखकर भट्टाचार्य ने उन्हें प्रणाम किया।

सबा सहित यथा-योग्य करिल मिलन ।
प्रभु देखि' सबार हैल हरषित मन ॥ ३२ ॥

सबा सहित यथा-योग्य करिल मिलन ।
प्रभु देखि' सबार हैल हरषित मन ॥ ३२ ॥

सबा सहित—उन सबके साथ; यथा-योग्य—यथा योग्य; करिल—किया; मिलन—मिलन; प्रभु देखि'—महाप्रभु को देखकर; सबार—सबके; हैल—हो गये; हरषित—हर्षित; मन—मन।

अनुवाद

सार्वभौम सभी भक्तों से मिले और उनका समुचित स्वागत किया। वे सभी श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर प्रसन्न थे।

सार्वभौम पाठाइल सबा दर्शन करिते ।
'चन्दनेश्वर' निज-पुत्र दिल सबार साथे ॥ ३३ ॥

सार्वभौम पाठाइल सबा दर्शन करिते ।
'चन्दनेश्वर' निज-पुत्र दिल सबार साथे ॥ ३३ ॥

सार्वभौम—सार्वभौम भट्टाचार्य; **पाठाइल**—उनको भेजा; **सबा**—सबको; **दर्शन करिते**—भगवान् जगन्नाथ के दर्शन के लिए; **चन्दन-ईश्वर**—चन्दनेश्वर नामक; **निज-पुत्र**—अपने पुत्र; **दिल**—दिया; **सबार साथे**—उन सबके साथ।

अनुवाद

तब भट्टाचार्य ने उन सबको जगन्नाथजी का दर्शन करने के लिए वापस भेज दिया और मार्गदर्शक के रूप में अपने पुत्र चन्दनेश्वर को उनके साथ भेजा।

জগন্নাথ দেখি' সবার হইল আনন্দ ।
ভাবেতে আবিষ্ট হৈলা প্রভু নিত্যানন্দ ॥ ৩৪ ॥

জগন্নাথ দেখি' সবার হইল আনন্দ ।
ভাবেতে আবিষ্ট হৈলা প্রভু নিত্যানন্দ ॥ ৩৪ ॥

জগন্নাথ দেখি'—भगवान् जगन्नाथ को देखकर; **সবার**—प्रत्येक को; **হইল**—हुआ; **আনন্দ**—आनन्द; **ভাবেতে**—भावावेश में; **আবিষ্ট**—भावविभोर; **হৈলা**—हो गये; **প্রভু নিত্যানন্দ**—नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

तत्पश्चात् जगन्नाथजी के विग्रह को देखकर सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। नित्यानन्द प्रभु विशेष रूप से भावविभोर हो गये।

সবে মেলি' ধরি তাঁরে সুস্থির করিল ।
ঈশ্বর-সেবক মালা-প্রসাদ আনি' দিল ॥ ৩৫ ॥

সবে মেলি' ধরি তাঁরে সুস্থির করিল ।
ঈশ্বর-সেবক মালা-প্রসাদ আনি' দিল ॥ ৩৫ ॥

সবে মেলি'—सबने मिलकर; **ধরি**—पकड़ लिया; **তাঁরে**—उनको; **সু-স্থির**—स्थिर; **করিল**—किया; **ঈশ্বর-সেবক**—अर्चाविग्रह का पुजारी; **মালা**—माला; **প্রসাদ**—प्रसाद; **আনি**—लाकर; **দিল**—दिया।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु लगभग अचेत हो गये, तो सारे भक्तों ने उन्हें पकड़कर सुस्थिर किया। उस समय जगन्नाथजी का पुजारी विग्रह पर अर्पित एक माला ले आया और नित्यानन्द प्रभु को समर्पित की।

प्रसाद पाञा सबे हैला आनन्दित मने ।
पुनरपि आइला सबे महाप्रभुर स्थाने ॥ ३६ ॥

प्रसाद पाञा—माला रूप प्रसाद पाकर; **सबे**—वे सभी; **हैला**—हो गये; **आनन्दित मने**—मन में प्रसन्न; **पुनरपि**—फिर; **आइला**—वापस आये; **सबे**—सब; **महाप्रभुर स्थाने**—महाप्रभु के स्थान पर।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ द्वारा पहनी हुई इस माला को प्राप्त करके सारे लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। बाद में वे सभी उस स्थान पर लौट आये जहाँ महाप्रभु रुके थे।

उच्च करि' करे सबे नाम-सङ्कीर्तन ।
तृतीय प्रहरे हैल प्रभुर चेतन ॥ ३७ ॥

उच्च—ऊँची आवाज में; **करि'**—करके; **करे**—आरम्भ किया; **सबे**—सबने; **नाम-सङ्कीर्तन**—हरे कृष्ण महामंत्र का नाम संकीर्तन; **तृतीय प्रहरे**—दोपहर के बाद; **हैल**—आ गई; **प्रभुर**—महाप्रभु को; **चेतन**—चेतना।

अनुवाद

तत्पश्चात् सारे भक्त उच्च स्वर में हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने लगे। महाप्रभु दोपहर से थोड़ा समय पहले सचेत हो गये।

হুঙ্কার করিয়া উঠে 'হরি' 'হরি' বলি' ।
আনন্দে সার্বভৌম তাঁর লৈল পদ-ধূলি ॥৩৮॥

হুঙ্কার করিয়া উঠে 'হরি' 'হরি' বলি' ।
আনন্দে সার্বভৌম তাঁর লৈল পদ-ধূলি ॥ ३८ ॥

হুঙ্কার করিয়া—ऊँची आवाज करते हुए; **উঠে**—उठे; **হরি হরি বলি'**—हरि हरि बोलते हुए; **আনন্দে**—आनन्द में; **সার্বভৌম**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **তাঁর**—उनका; **লৈল**—ले ली; **পদ-ধূলি**—चरण धूलि।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उठकर बैठ गये और हुंकार भरते हुए "हरि!" "हरि!" का उच्चारण करने लगे। सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु को सचेत देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने महाप्रभु के चरण-धूलि ग्रहण की।

সার্বভৌম কহে,—শীঘ্র করহ মধ্যাহ্ন ।
মুঞি ভিক্ষা দিমু আজি মহা-প্রসাদান্ন ॥৩৯॥

সার্বভৌম কহে,—শীঘ্র করহ মধ্যাহ্ন ।
মুঞি ভিক্ষা দিমু আজি মহা-প্রসাদান্ন ॥ ३९ ॥

সার্বভৌম—सार्वभौम भट्टाचार्य; **কহে**—ने कहा; **শীঘ্র**—शीघ्र; **করহ**—करो; **মধ্য-অহ্ন**—दोपहर के कार्य; **মুঞি**—मैं; **ভিক্ষা**—भिक्षा; **দিমু**—दूँगा; **আজি**—आज; **মহা-প্রসাদ-অন্ন**—भगवान् जगन्नाथ का उच्छिष्ट।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने सबसे कहा, "कृपया तुरन्त ही दोपहर का स्नान कर लें। आज मैं आप लोगों को महा-प्रसाद अर्थात् भगवान् जगन्नाथ को अर्पित भोग का उच्छिष्ट दूँगा।"

সমুদ্র-স্নান করি' মহাপ্রভু শীঘ্র আইলা ।
চরণ পাখালি' প্রভু আসনে বসিলা ॥৪০॥

সমুদ্র-স্নান করি' মহাপ্রভু শীঘ্র আইলা ।
চরণ পাখালি' প্রভু আসনে বসিলা ॥ ४० ॥

समुद्र-स्नान—समुद्र स्नान; **करि'**—करके; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **शीघ्र**—शीघ्र; **आइला**—लौट आये; **चरण**—चरण; **पाखालि'**—धोकर; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **आसने**—आसन पर; **वसिला**—बैठ गये।

अनुवाद

समुद्र स्नान करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तजन तुरन्त ही लौट आये। तत्पश्चात् महाप्रभु ने अपने पाँव धोये और भोजन करने के लिए एक आसन पर बैठ गये।

বহুত প্রসাদ সার্বভৌম আনাইল ।
তবে মহাপ্রভু সুখে ভোজন করিল ॥ ৪১ ॥

বহুত প্রসাদ সার্বভৌম আনাইল ।
তবে মহাপ্রভু সুখে ভোজন করিল ॥ ৪১ ॥

বহুত প্রসাদ—भगवान् जगन्नाथ को अर्पित विविध प्रकार के भोजन; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **आनाइल**—मंगवाया; **तबे**—उस समय; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **सुखे**—आनन्द सहित; **भोजन**—भोजन; **करिल**—ग्रहण किया।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने जगन्नाथ मन्दिर से विविध प्रकार का महाप्रसाद लाये जाने की व्यवस्था की। तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने परम सुखपूर्वक दोपहर का भोजन ग्रहण किया।

সুবর্ণ-থালীর অন্ন উত্তম ব্যঞ্জন ।
ভক্ত-গণ-সঙ্গে প্রভু করেন ভোজন ॥ ৪২ ॥

সুবর্ণ-থালীর অন্ন উত্তম ব্যঞ্জন ।
ভক্ত-গণ-সঙ্গে প্রভু করেন ভোজন ॥ ৪২ ॥

সুবর্ণ-থালীর—स्वर्ण की थालियों में; **অন্ন**—भात; **উত্তম**—उत्तम; **ব্যঞ্জন**—तरकारियाँ; **ভক্ত-গণ**—भक्तगण; **সঙ্গে**—के साथ; **প্রভু**—भगवान् चैतन्य महाप्रभु; **করেন**—लेते हैं; **ভোজন**—भोजन।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु को सोने की थाली में विशेष चावल तथा सर्वोत्तम

तरकारियाँ परोसी गईं। इस तरह महाप्रभु ने अपने भक्तों के साथ भोजन किया।

सार्वभौम परिवेशन करेन आपने ।
प्रभु कहे,—मोरे देह लाफ्रा-व्यञ्जने ॥ ४३ ॥
सार्वभौम परिवेशन करेन आपने ।
प्रभु कहे,—मोरे देह लाफ्रा-व्यञ्जने ॥ ४३ ॥

सार्वभौम—सार्वभौम भट्टाचार्य; **परिवेशन**—वितरण; **करेन**—करते हैं; **आपने**—स्वयं; **प्रभु कहे**—चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **मोरे**—मुझे; **देह**—दो; **लाफ्रा-व्यञ्जने**—उबली हुई तरकारियाँ।

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य स्वयं ही प्रसाद का वितरण कर रहे थे, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे अनुरोध किया, "कृपया मुझे केवल उबली तरकारियाँ दें।

तात्पर्य

लाफ्रा व्यंजन अनेक प्रकार की तरकारियों को उबालकर बनाया जाता है और तब उसमें जीरा, काली मिर्च तथा सरसों के बीज जैसे मसालों का *छोंक* लगाया जाता है।

पीठा-पाना देह तुमि ईँहा-सवाकारे ।
तबे भट्टाचार्य कहे युड़ि' दुई करे ॥ ४४ ॥
पीठा-पाना देह तुमि इँहा-सबाकारे ।
तबे भट्टाचार्य्य कहे य़ुड़ि' दुइ करे ॥ ४४ ॥

पीठा-पाना—पीठा पाना (दूध से बना एक व्यंजन); **देह**—दो; **तुमि**—आप; **इँहा-सबाकारे**—इन सब भक्तों को; **तबे**—उस समय; **भट्टाचार्य्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **कहे**—कहा; **य़ुड़ि'**—जोड़कर; **दुइ करे**—दोनों हाथ।

अनुवाद

"आप सारे भक्तों को पीठा (केक) तथा कड़े हुए दूध से बने द्रव्य

(रबड़ी) दे सकते हैं।" यह सुनकर भट्टाचार्य दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले।

জগন্নাথ কৈছে করিয়াছেন ভোজন ।
আজি সব মহাপ্রসাদ কর আস্বাদন ॥ ৪৫ ॥

জগন্নাথ কৈছে করিয়াছেন ভোজন ।
আজি সব মহাপ্রসাদ কর আস্বাদন ॥ ৪৫ ॥

जगन्नाथ—भगवान् जगन्नाथ; **कैछे**—जैसे; **करियाछेन**—स्वीकार किया है; **भोजन**—भोजन; **आजि**—आज; **सब**—आप सब; **महा-प्रसाद**—भगवान् को अर्पित भोग का उच्छिष्ट; **कर**—करो; **आस्वादन**—आस्वादन।

अनुवाद

"आज आप सब दोपहर के भोजन का उसी प्रकार आस्वादन करें, जिस प्रकार भगवान् जगन्नाथ ने इसे स्वीकार किया है।"

এত বলি' পীঠা-পানা সব খাওয়াইলা ।
ভিক্ষা করাঞা আচমন করাইলা ॥ ৪৬ ॥

এত বলি' পীঠা-পানা সব খাওয়াইলা ।
ভিক্ষা করাঞা আচমন করাইলা ॥ ৪৬ ॥

एत बलि'—इतना कहकर; **पीठा-पाना**—पीठा पाना (दूध से निर्मित कई प्रकार के खाद्य पदार्थ); **सब**—सबको; **खाओयाइला**—खिलाया; **भिक्षा कराञा**—प्रसाद अर्पित करने के बाद; **आचमन कराइला**—हाथ, मुँह और पैर धुलाकर।

अनुवाद

यह कहकर उन्होंने सबको विविध प्रकार का पीठा तथा पाना (दूध से निर्मित व्यंजन) खिलाया। बाद में उन्हें हाथ, मुँह तथा पाँव धोने के लिए जल दिया।

আজ্ঞা মাগি' গেলা গোপীনাথ আচার্যকে লঞা ।
প্রভুর নিকট আইলা ভোজন করিঞা ॥ ৪৭ ॥

आज्ञा मागि' गेला गोपीनाथ आचार्य्यके लञा ।
प्रभुर निकट आइला भोजन करिञा ॥ ४७ ॥

आज्ञा मागि'—आज्ञा लेकर; **गेला**—गये; **गोपीनाथ आचार्य्यके लञा**—गोपीनाथ आचार्य को लेकर; **प्रभुर**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; **निकट**—निकट; **आइला**—गये; **भोजन करिञा**—भोजन करने के बाद।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों से आज्ञा लेकर सार्वभौम भट्टाचार्य गोपीनाथ आचार्य सहित भोजन करने गये। भोजन करने के बाद वे महाप्रभु के पास लौट आये।

'नमो नारायणाय' बलि' नमस्कार कैल ।
'कृष्णे मतिरस्तु' बलि' गोसाञि कहिल ॥ ४८ ॥
'नमो नारायणाय' बलि' नमस्कार कैल ।
'कृष्णे मतिरस्तु' बलि' गोसाञि कहिल ॥ ४८ ॥

नमः नारायणाय—मैं नारायण को सादर प्रणाम करता हूँ; **बलि'**—कहकर; **नमस्कार कैल**—चैतन्य महाप्रभु को प्रणाम किया; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण की ओर; **मतिः अस्तु**—आप आकर्षित होओ; **बलि'**—कहकर; **गोसाञि**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **कहिल**—बोले।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने *नमो नारायणाय* (मैं नारायण को नमस्कार करता हूँ) कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर में *कृष्णे मतिरस्तु* कहा (आपका ध्यान कृष्ण में हो)।

तात्पर्य

संन्यासियों में यह शिष्टाचार है कि एक-दूसरे से *ॐ नमो नारायणाय* ("मैं नारायण को प्रणाम करता हूँ।") कहकर सम्मान प्रदर्शित करते हैं। यह शिष्टाचार विशेषतया मायावादी संन्यासियों में प्रयुक्त होता है। स्मृतियों के अनुसार संन्यासी को किसी से कोई आशा नहीं करनी चाहिए, न ही उसे अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समान मानना चाहिए। वैष्णव संन्यासी कभी भी अपने आपको भगवान् से एकाकार नहीं मानते। वे तो सदा अपने आपको कृष्ण का नित्य दास मानते हैं और चाहते हैं कि संसार का हर व्यक्ति

कृष्णभावनाभावित बने। इसीलिए वैष्णव संन्यासी सदैव हर एक को यह आशीर्वाद देता है, *कृष्णे मतिरस्तु* ("आप कृष्णभावनाभावित बनें")।

শুনি' সার্বভৌম মনে বিচার করিল ।
বৈষ্ণব-সন্ন্যাসী ইঁহো, বচনে জানিল ॥ ৪৯ ॥

शुनि' सार्वभौम मने विचार करिल ।
वैष्णव-सन्न्यासी इँहो, वचने जानिल ॥ ४९ ॥

शुनि'—यह सुनकर; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **मने**—मन में; **विचार करिल**—विचार किया; **वैष्णव-सन्न्यासी**—एक वैष्णव संन्यासी; **इँहो**—यह व्यक्ति; **वचने**—वाणी से; **जानिल**—समझ गये।

अनुवाद

ये वचन सुनकर सार्वभौम समझ गये कि श्री चैतन्य महाप्रभु एक वैष्णव संन्यासी हैं।

গোপীনাথ আচার্যেরে কহে সার্বভৌম ।
গোসাঞির জানিতে চাহি কাহাঁ পূর্বাশ্রম ॥ ৫০ ॥

गोपीनाथ आचार्येरे कहे सार्वभौम ।
गोसाञिर जानिते चाहि काहाँ पूर्वाश्रम ॥ ५० ॥

गोपीनाथ आचार्येरे—गोपीनाथ आचार्य को; **कहे**—कहा; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **गोसाञिर**—चैतन्य महाप्रभु को; **जानिते**—जानने के लिए; **चाहि**—मैं चाहता हूँ; **काहाँ**—क्या; **पूर्व-आश्रम**—पिछली स्थिति।

अनुवाद

तब सार्वभौम ने गोपीनाथ आचार्य से कहा, "मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के पूर्व आश्रम (स्थिति) को जानना चाहता हूँ।"

तात्पर्य

पूर्वाश्रम शब्द किसी के जीवन की पूर्व अवस्था का द्योतक है। कभी कोई व्यक्ति गृहस्थाश्रम के बाद संन्यास आश्रम स्वीकार करता है, तो कभी विद्यार्थी जीवन (ब्रह्मचारी) से ही। सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के गृहस्थ के रूप में जीवन की पूर्व अवस्था को जानना चाहते थे।

গোপীনাথাচার্য কহে,——নবদ্বীপে ঘর ।
'জগন্নাথ'——নাম, পদবী——'মিশ্র পুরন্দর' ॥৫১॥

গোপীনাথাচার্য্য কহে,——নবদ্বীপে ঘর ।
'জগন্নাথ'——নাম, পদবী——'মিশ্র পুরন্দর' ॥৫১॥

গোপীনাথ-আচার্য্য কহে—गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; **নবদ্বীপে**—नवद्वीप में; **ঘর**—निवास; **জগন্নাথ**—जगन्नाथ; **নাম**—नामक; **পদবী**—उपनाम; **মিশ্র পুরন্দর**—मिश्र पुरन्दर।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "नवद्वीप में जगन्नाथ नामक एक निवासी थे, जिनका उपनाम मिश्र पुरन्दर था।

'বিশ্বম্ভর'——নাম ইঁহার, তাঁর ইঁহো পুত্র ।
নীলাম্বর চক্রবর্তীর হয়েন দৌহিত্র ॥৫২॥

'বিশ্বম্ভর'——নাম ইঁহার, তাঁর ইঁহো পুত্র ।
নীলাম্বর চক্রবর্তীর হয়েন দৌহিত্র ॥৫২॥

বিশ্বম্ভর—विश्वम्भर; **নাম**—नाम; **ইঁহার**—इनका; **তাঁর**—जगन्नाथ मिश्र का; **ইঁহো**—वे; **পুত্র**—पुत्र; **নীলাম্বর চক্রবর্তীর**—नीलाम्बर चक्रवर्ती के; **হয়েন**—हैं; **দৌহিত্র**—पौत्र (लड़की का पुत्र)।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हीं जगन्नाथ मिश्र के पुत्र हैं और इनका पहले का नाम विश्वम्भर मिश्र था। ये नीलाम्बर चक्रवर्ती के नाती भी लगते हैं।"

সার্বভৌম কহে,——নীলাম্বর চক্রবর্তী ।
বিশারদের সমাধ্যায়ী,——এই তাঁর খ্যাতি ॥৫৩॥

সার্বভৌম কহে,——নীলাম্বর চক্রবর্তী ।
বিশারদের সমাধ্যায়ী,——এই তাঁর খ্যাতি ॥৫৩॥

সার্বভৌম কহে—सार्वभौम ने कहा; **নীলাম্বর চক্রবর্তী**—नीलाम्बर चक्रवर्ती नामक व्यक्ति; **বিশারদের**—महेश्वर विशारद (सार्वभौम के पिता) के; **সমাধ্যায়ী**—सहपाठी; **এই**—यह; **তাঁর**—उनकी; **খ্যাতি**—पहचान।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "नीलाम्बर चक्रवर्ती तो मेरे पिता महेश्वर विशारद के सहपाठी थे। मैं उन्हें इसी रूप में जानता था।

'मिश्र पुरन्दर' ताँर मान्य, हेन जानि ।
पितार सम्बन्धे दोंहाके पूज्य करि' मानि ॥५४॥

'मिश्र पुरन्दर' ताँर मान्य, हेन जानि ।
पितार सम्बन्धे दोंहाके पूज्य करि' मानि ॥५४॥

मिश्र पुरन्दर—जगन्नाथ मिश्र पुरन्दर; **ताँर**—उनके द्वारा; **मान्य**—पूजनीय; **हेन**—इस प्रकार; **जानि**—मैं जानता हूँ; **पितार सम्बन्धे**—मेरे पिता के सम्बन्ध से; **दोंहाके**—वे दोनों (नीलाम्बर चक्रवर्ती और जगन्नाथ मिश्र); **पूज्य**—पूज्य; **करि'**—सोचकर; **मानि**—मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

"मेरे पिता जगन्नाथ मिश्र पुरन्दर का आदर करते थे। इस तरह मेरे पिता के साथ सम्बन्ध होने के कारण मैं जगन्नाथ मिश्र तथा नीलाम्बर चक्रवर्ती दोनों का आदर करता हूँ।"

नदीया-सम्बन्धे सार्वभौम हृष्ट हैला ।
प्रीत हञा गोसाञिरे कहिते लागिला ॥५५॥

नदीया-सम्बन्धे सार्वभौम हृष्ट हैला ।
प्रीत हञा गोसाञिरे कहिते लागिला ॥५५॥

नदीया-सम्बन्धे—नदीया से सम्बन्धित; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **हृष्ट**—प्रसन्न; **हैला**—हो गये; **प्रीत हञा**—इस प्रकार प्रसन्न होकर; **गोसाञिरे**—चैतन्य महाप्रभु को; **कहिते लागिला**—कहने लगे।

अनुवाद

यह सुनकर कि श्री चैतन्य महाप्रभु नदीया जिले के हैं, सार्वभौम भट्टाचार्य अत्यन्त प्रसन्न हुए और महाप्रभु से वे इस प्रकार बोले।

'सहजेइ पूज्य तुमि, आरे त' सन्न्यास ।
अतएव हँ तोमार आमि निज-दास' ॥५६॥

'सहजेइ पूज्य तुमि, आरे त' सन्न्यास ।
अतएव हङ तोमार आमि निज-दास' ॥५६॥

सहजेइ—स्वाभाविक रूप से; **पूज्य**—पूज्य; **तुमि**—आप; **आरे**—इसके अलावा; **त'**—निश्चित रूप से; **सन्न्यास**—संन्यास; **अतएव**—अतएव; **हङ**—हूँ; **तोमार**—आपका; **आमि**—मैं; **निज-दास**—निजी दास।

अनुवाद

"आप स्वाभाविक रूप से मेरे पूज्य हैं। इसके अतिरिक्त आप संन्यासी हैं, अतएव मैं आपका निजी दास बनना चाहता हूँ।"

तात्पर्य

गृहस्थों को चाहिए कि संन्यासी की सदैव पूजा करें और उसे सभी प्रकार का आदर प्रदान करें। यद्यपि सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु से आयु में बड़े थे, किन्तु उन्होंने उनका सम्मान संन्यासी के रूप में तथा सर्वोच्च आध्यात्मिक भाव को प्राप्त व्यक्ति के रूप में किया। इस तरह उन्होंने महाप्रभु को निश्चित रूप से अपने स्वामी के रूप में स्वीकार किया।

शुनि' महाप्रभु कैल श्री-विष्णु स्मरण ।
भट्टाचार्ये कहे किछु विनय वचन ॥५७॥

शुनि' महाप्रभु कैल श्री-विष्णु स्मरण ।
भट्टाचार्ये कहे किछु विनय वचन ॥५७॥

शुनि'—यह सुनकर; **महाप्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **कैल**—किया; **श्री-विष्णु स्मरण**—भगवान् विष्णु का स्मरण; **भट्टाचार्ये**—सार्वभौम भट्टाचार्य को; **कहे**—कहा; **किछु**—कुछ; **विनय वचन**—विनम्र शब्द।

अनुवाद

भट्टाचार्य से यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त भगवान् विष्णु का स्मरण किया और अत्यन्त विनीत भाव से उनसे इस प्रकार बोले।

"तुमि जगदगुरु—सर्वलोक-हित-कर्ता ।
वेदान्त पड़ाओ, सन्न्यासीर उपकर्ता ॥५८॥

"तुमि जगद्गुरु—सर्वलोक-हित-कर्ता ।
वेदान्त पड़ाओ, सन्न्यासीर उपकर्ता ॥५८॥

तुमि जगत्-गुरु—आप जगद्गुरु हो; **सर्व-लोक**—सभी लोगों के; **हित-कर्ता**—हितैषी; **वेदान्त पड़ाओ**—वेदान्त दर्शन पढ़ाते हो; **सन्न्यासीर**—संन्यासियों का; **उपकर्ता**—उपकार करने वाले।

अनुवाद

"चूँकि आप वेदान्त दर्शन के अध्यापक हैं, अतएव आप विश्व के समस्त लोगों के गुरु तथा उनके शुभचिन्तक भी हैं। आप सभी संन्यासियों का हित भी करने वाले हैं।

तात्पर्य

चूँकि मायावादी संन्यासी अपने शिष्यों को वेदान्त दर्शन की शिक्षा देते हैं, अतएव प्रथानुसार वे *जगद्गुरु* कहलाते हैं। इससे सूचित होता है कि वे सारे लोगों के हितैषी हैं। यद्यपि सार्वभौम भट्टाचार्य संन्यासी नहीं थे, किन्तु गृहस्थ होने के कारण वे अपने घर में सभी संन्यासियों को आमंत्रित करते थे और उन्हें प्रसाद देते थे। इस तरह वे समस्त लोगों के शुभचिन्तक तथा समस्त संन्यासियों के मित्र माने जाते थे।

आमि बालक-सन्न्यासी—भान्द-मन्द नाहि जानि ।
तोमार आश्रय निलुँ, गुरु करि' मानि ॥५९॥

आमि बालक-सन्न्यासी—भाल-मन्द नाहि जानि ।
तोमार आश्रय निलुँ, गुरु करि' मानि ॥५९॥

आमि—मैं; **बालक-सन्न्यासी**—युवा संन्यासी; **भान्द-मन्द**—अच्छा बुरा; **नाहि**—नहीं; **जानि**—जानता हूँ; **तोमार**—आपका; **आश्रय**—आश्रय; **निलुँ**—लिया है; **गुरु**—गुरु; **करि'**—मानकर; **मानि**—मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

"मैं तो अभी तरुण संन्यासी हूँ और मुझे अच्छे-बुरे का कोई ज्ञान नहीं

है। अतएव मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ और आपको अपना गुरु मानता हूँ।

তোমার সঙ্গ লাগি' মোর ইহাঁ আগমন ।
সর্ব-প্রকারে করিবে আমায় পালন ॥ ৬০ ॥

तोमार सङ्ग लागि' मोर इहाँ आगमन ।
सर्व-प्रकारे करिबे आमाय पालन ॥ ६० ॥

तोमार—आपकी; **सङ्ग**—संगति; **लागि'**—के लिए; **मोर**—मेरा; **इहाँ**—यहाँ; **आगमन**—आना; **सर्व-प्रकारे**—सभी प्रकार से; **करिबे**—आप करोगे; **आमाय**—मेरा; **पालन**—पालन पोषण।

अनुवाद

"मैं यहाँ आपका संग करने आया हूँ और अब मैं आपकी शरण ग्रहण कर रहा हूँ। क्या आप कृपया सभी प्रकार से मेरा पालन करेंगे?

আজি যে হৈল আমার বড়-ই বিপত্তি ।
তাহা হৈতে কৈলে তুমি আমার অব্যাহতি'' ॥ ৬১ ॥

आजि ये हैल आमार बड़-इ विपत्ति ।
ताहा हैते कैले तुमि आमार अव्याहति" ॥ ६१ ॥

आजि—आज; **ये**—वह जो; **हैल**—हुआ; **आमार**—मेरा; **बड़-इ**—अत्यन्त बड़ा; **विपत्ति**—विपत्ति; **ताहा**—वह संकट; **हैते**—से; **कैले**—किया; **तुमि**—आपने; **आमार**—मेरा; **अव्याहति**—छुटकारा, बचाव।

अनुवाद

"आज जो घटना घटी है, वह मेरे लिए महान् विपत्ति थी; किन्तु आपने मुझे उससे उबार लिया है।"

ভট্টাচার্য কহে,—একলে তুমি না যাইহ দর্শনে ।
আমার সঙ্গে যাবে, কিম্বা আমার লোক-সনে ॥ ৬২ ॥

भट्टाचार्य कहे,—एकले तुमि ना याइह दर्शने ।
आमार सङ्गे याबे, किम्वा आमार लोक-सने ॥ ६२ ॥

भट्टाचार्य्य कहे—भट्टाचार्य ने कहा; **एकले**—अकेले; **तुमि**—आप; **ना**—नहीं; **याइह**—जाओ; **दर्शने**—अर्चाविग्रह के दर्शन के लिए; **आमार सङ्गे**—मेरे साथ; **याबे**—आपको जाना चाहिए; **किम्वा**—अथवा; **आमार लोक-सने**—मेरे लोगों के साथ।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "आप जगन्नाथ मन्दिर में विग्रह-दर्शन करने अकेले न जाएँ। अच्छा होगा कि आप या तो मेरे साथ या मेरे लोगों के साथ जाएँ।"

প্রভু কহে,—'মন্দির ভিতরে না যাইব ।
গরুড়ের পাশে রহি' দর্শন করিব' ॥ ৬৩ ॥

প্রভু কহে,—'মন্দির ভিতরে না যাইব ।
গরুড়ের পাশে রহি' দর্শন করিব' ॥ ৬৩ ॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; **मन्दिर**—मन्दिर; **भितरे**—के अन्दर; **ना**—नहीं; **याइब**—जाऊँगा; **गरुड़ेर**—गरुड़ स्तम्भ नामक स्तम्भ; **पाशे**—के पास; **रहि'**—ठहरकर; **दर्शन**—दर्शन; **करिब**—करूँगा।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "मैं अब कभी भी मन्दिर के भीतर नहीं जाऊँगा। मैं सदैव गरुड़-स्तम्भ के पास से भगवान् का दर्शन किया करूँगा।"

গোপীনাথাচার্যকে কহে সার্বভৌম ।
'তুমি গোসাঞিরে লঞা করাইহ দরশন ॥ ৬৪ ॥

গোপীনাথাচার্য্যকে কহে সার্বভৌম ।
'তুমি গোসাঞিরে লঞা করাইহ দরশন ॥ ৬৪ ॥

गोपीनाथ-आचार्य्यके—गोपीनाथ आचार्य को; **कहे**—कहा; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **तुमि**—तुम; **गोसाञिरे**—चैतन्य महाप्रभु; **लञा**—लेकर; **कराइह**—उन्हें करवाना; **दरशन**—भगवान् जगन्नाथ के दर्शन।

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने गोपीनाथ आचार्य से कहा, "गोस्वामीजी को ले जाओ और उन्हें जगन्नाथजी का दर्शन कराओ।

আমার মাতৃ-স্বসা-গৃহ—নির্জন স্থান ।
তাহাঁ বাসা দেহ, কর সর্ব সমাধান' ॥ ৬৫ ॥

আমার মাতৃ-স্বসা-গৃহ—নির্জন স্থান ।
তাহাঁ বাসা দেহ, কর সর্ব সমাধান' ॥ ৬৫ ॥

আমার—मेरी; **মাতৃ-স্বসা**—मौसी; **গৃহ**—घर; **নির্জন স্থান**—निर्जन स्थान; **তাহাঁ**—वहाँ; **বাসা**—एक कमरा; **দেহ**—दो; **কর**—करो; **সর্ব**—सभी; **সমাধান**—व्यवस्था।

অনুবাদ

"मेरी मौसी का घर अत्यन्त निर्जन स्थान में है। वहीं इनके रहने की सारी व्यवस्था कर देना।"

গোপীনাথ প্রভু লঞা তাহাঁ বাসা দিল ।
জল, জল-পাত্রাদিক সর্ব সমাধান কৈল ॥ ৬৬ ॥

গোপীনাথ প্রভু লঞা তাহাঁ বাসা দিল ।
জল, জল-পাত্রাদিক সর্ব সমাধান কৈল ॥ ৬৬ ॥

গোপীনাথ—गोपीनाथ आचार्य; **প্রভু**—चैतन्य महाप्रभु; **লঞা**—लेकर; **তাহাঁ**—वहाँ; **বাসা**—कमरा; **দিল**—दिया; **জল**—जल; **জল-পাত্র-আদিক**—जलपात्र तथा अन्य पात्र; **সর্ব**—सभी; **সমাধান**—प्रबन्ध; **কৈল**—किये।

অনুবাদ

गोपीनाथ आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को उस घर तक ले गये और उन्हें पानी, पानी के पात्र, नाँद आदि दिखला दिया। इस प्रकार उन्होंने सब प्रकार की व्यवस्था कर दी।

আর দিন গোপীনাথ প্রভু স্থানে গিয়া ।
শয়্যোত্থান দরশন করাইল লঞা ॥ ৬৭ ॥

আর দিন গোপীনাথ প্রভু স্থানে গিয়া ।
শয্যোত্থান দরশন করাইল লঞা ॥ ৬৭ ॥

আর দিন—अगले दिन; **গোপীনাথ**—गोपीनाथ आचार्य; **প্রভু**—चैतन्य महाप्रभु के; **স্থানে**—निवासस्थान; **গিয়া**—जाकर; **শয্যা-উত্থান**—भगवान् जगन्नाथ का शय्या से उठना (जगना); **দরশন**—देखना; **করাইল**—करवाया; **লঞা**—उनको ले जाकर।

अनुवाद

अगले दिन गोपीनाथ आचार्य चैतन्य महाप्रभु को जगन्नाथ भगवान् का शय्योत्थान (भोर के समय उठाना) दिखाने ले गये।

मुकुन्द-दत्त लञा आईला सार्वभौम स्थाने ।
सार्वभौम किछु ताँरे बलिला वचने ॥ ६८॥

मुकुन्द-दत्त लञा आइला सार्वभौम स्थाने ।
सार्वभौम किछु ताँरे बलिला वचने ॥ ६८॥

मुकुन्द-दत्त—मुकुन्द दत्त; **लञा**—लेकर; **आइला**—गये; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **स्थाने**—घर; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **किछु**—कुछ; **ताँरे**—मुकुन्द दत्त को; **बलिला**—कहा; **वचने**—वचन।

अनुवाद

इसके बाद गोपीनाथ आचार्य मुकुन्द दत्त को अपने साथ लेकर सार्वभौम भट्टाचार्य के घर गये। वहाँ पहुँचने पर सार्वभौम ने मुकुन्द दत्त से इस प्रकार कहा।

'प्रकृति-विनीत, सन्न्यासी देखिते सुन्दर ।
आमार बहु-प्रीति बाड़े ईँहार उपर ॥ ६९॥

'प्रकृति-विनीत, सन्न्यासी देखिते सुन्दर ।
आमार बहु-प्रीति बाड़े ईँहार उपर ॥ ६९॥

प्रकृति-विनीत—स्वभाव के अत्यन्त नम्र एवं विनीत; **सन्न्यासी**—संन्यासी; **देखिते**—देखने में; **सुन्दर**—बहुत सुन्दर; **आमार**—मेरा; **बहु-प्रीति**—अत्यन्त प्रेम; **बाड़े**—बढ़ता है; **ईँहार**—उन; **उपर**—पर।

अनुवाद

"यह संन्यासी अत्यन्त नम्र एवं विनीत स्वभाव का है और देखने में अत्यन्त सुन्दर है। फलतः इसके प्रति मेरा स्नेह बढ़ता जा रहा है।

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त विनीत व्यक्ति मानते

थे, क्योंकि संन्यासी होते हुए भी उन्होंने अपना ब्रह्मचारी नाम नहीं छोड़ा था। महाप्रभु ने भारती सम्प्रदाय के श्रील केशव भारती से संन्यास ग्रहण किया था, जिसमें ब्रह्मचारियों (संन्यासियों के सेवकों) को "चैतन्य" कहा जाता है। संन्यास लेने के बाद भी महाप्रभु ने "चैतन्य" नाम का त्याग नहीं किया। चैतन्य का अर्थ है संन्यासी का विनीत दास। सार्वभौम भट्टाचार्य को यह बात बहुत प्रशंसनीय लगी।

কোন্সম্প্রদায়ে সন্ন্যাস কর্যাছেন গ্রহণ ।
কিবা নাম ইঁহার, শুনিতে হয় মন' ॥৭০॥

कोन्सम्प्रदाये सन्न्यास कर्य़ाछेन ग्रहण ।
किबा नाम इँहार, शुनिते हय मन' ॥७०॥

कोन् सम्प्रदाये—किस सम्प्रदाय में; **सन्न्यास**—संन्यास; **कर्य़ाछेन**—लिया है; **ग्रहण**—स्वीकार; **किबा**—क्या; **नाम**—नाम; **इँहार**—उनका; **शुनिते**—सुनने में; **हय**—है; **मन**—मेरा मन।

अनुवाद

"इन्होंने किस सम्प्रदाय से संन्यास ग्रहण किया है और इनका नाम क्या है?"

গোপীনাথ কহে,—নাম শ্রীকৃষ্ণ-চৈতন্য ।
গুরু ইঁহার কেশব-ভারতী মহা-ধন্য ॥৭১॥

गोपीनाथ कहे,—नाम श्रीकृष्ण-चैतन्य ।
गुरु इँहार केशव-भारती महा-धन्य ॥७१॥

गोपीनाथ कहे—गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; **नाम**—उनका नाम; **श्रीकृष्ण-चैतन्य**—श्रीकृष्ण चैतन्य; **गुरु**—संन्यास गुरु; **इँहार**—उनका; **केशव-भारती**—केशव भारती नामक; **महा-धन्य**—महा-भाग्यवान।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "महाप्रभु का नाम श्रीकृष्ण चैतन्य है और उन्हें संन्यास देने वाले गुरु महाभाग्यवान केशव भारती हैं।"

सार्वभौम कहे,—'ईँहार नाम सर्वोत्तम ।
भारती-सम्प्रदाय ईँहो—हयेन मध्यम' ॥७२॥

सार्वभौम कहे,—'इँहार नाम सर्वोत्तम ।
भारती-सम्प्रदाय इँहो—हयेन मध्यम' ॥७२॥

सार्वभौम कहे—सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; **इँहार**—उनका; **नाम**—नाम; **सर्व-उत्तम**—सर्वोत्तम; **भारती-सम्प्रदाय**—भारती सम्प्रदाय; **इँहो**—वे; **हयेन**—हो गये; **मध्यम**—मध्यम।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "श्रीकृष्ण नाम अत्युत्तम है, किन्तु ये भारती सम्प्रदाय के हैं, अतएव ये द्वितीय श्रेणी के संन्यासी हैं।"

गोपीनाथ कहे,—ईँहार नाहि बाह्यापेक्षा ।
अतएव बड़ सम्प्रदायेर नाहिक अपेक्षा ॥७३॥

गोपीनाथ कहे,—इँहार नाहि बाह्यापेक्षा ।
अतएव बड़ सम्प्रदायेर नाहिक अपेक्षा ॥७३॥

गोपीनाथ कहे—गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; **इँहार**—महाप्रभु को; **नाहि**—नहीं है; **बाह्य-अपेक्षा**—किसी बाहरी औपचारिकता पर निर्भरता; **अतएव**—अतएव; **बड़**—बड़े; **सम्प्रदायेर**—सम्प्रदाय की; **नाहिक**—नहीं है; **अपेक्षा**—आवश्यकता।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु किसी बाहरी औपचारिकता पर निर्भर नहीं हैं। उन्हें किसी श्रेष्ठ सम्प्रदाय से संन्यास ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भारती सम्प्रदाय से संन्यास ग्रहण किया था, जो शंकराचार्य की परम्परा से सम्बन्धित है। शंकराचार्य ने अपने संन्यासी शिष्यों के लिए नामों का प्रचलन किया, जिनकी संख्या दस है। इनमें से तीर्थ, आश्रम तथा सरस्वती सर्वप्रमुख माने जाते हैं। शृंगेरी मठ में सरस्वती प्रथम, भारती द्वितीय और पुरी तृतीय श्रेणी की उपाधियाँ मानी जाती हैं। जिस संन्यासी ने

तत्त्वमसि सूत्र को ठीक से समझ लिया है और जो गंगा, यमुना तथा सरस्वती के संगम में स्नान करता है, वह *तीर्थ* कहलाता है। जो व्यक्ति संन्यास लेने को आतुर है, सांसारिक कार्यों से विरक्त रहता है और जिसे भौतिक सुख की किसी प्रकार की इच्छा नहीं रहती और जो इस प्रकार जन्म-मरण के चक्र से बच गया है, वह *आश्रम* कहलाता है। जो संन्यासी सुन्दर एकान्त वन में निवास करता है और सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त है, वह *वन* कहलाता है। जो संन्यासी सदैव जंगल में रहता है और स्वर्ग में नन्दनकानन में रहने की इच्छा से भौतिक जगत् के सारे सम्बन्धों को त्याग देता है, वह *अरण्य* कहलाता है। जो व्यक्ति *भगवद्गीता* का अध्ययन करते हुए पर्वत पर रहता है और जिसकी बुद्धि स्थिर रहती है, वह *गिरि* कहलाता है। जो व्यक्ति हिंस्र पशुओं की चिन्ता न करते हुए सर्वोच्च दार्शनिक चिन्तन प्राप्त करने के उद्देश्य से (यह समझते हुए कि भौतिक संसार का सार निरर्थक है) बड़े-बड़े पर्वतों में रहता है, वह *पर्वत* कहलाता है। जिस संन्यासी ने परम सत्य-रूपी सागर में गोते लगाकर ज्ञानरूपी कुछ अमूल्य रत्न एकत्र कर लिये हैं और संन्यासी के विधि-विधान से कभी पथभ्रष्ट नहीं होता, वह *सागर* कहलाता है। जो व्यक्ति शास्त्रीय संगीत-कला में दक्ष होकर उसका अनुशीलन करता है और जो भौतिक आसक्ति से पूर्णतया दूर रहता है, वह *सरस्वती* कहलाता है। सरस्वती संगीत तथा विद्या की देवी हैं और वे एक हाथ में वीणा धारण किये रहती हैं। जो संन्यासी आध्यात्मिक उत्थान के लिए संगीत में लगा रहता है, वह सरस्वती कहलाता है। पूर्ण शिक्षित एवं सभी प्रकार के अज्ञान से मुक्त तथा दुःख में भी दुःखी न रहने वाला व्यक्ति *भारती* कहलाता है। जो परम ज्ञान में दक्ष होता है और परम सत्य के पद पर स्थित रहकर परम सत्य की व्याख्या में लगा रहता है, वह *पुरी* कहलाता है।

इन सारे संन्यासियों की सहायता के लिए ब्रह्मचारी रहते हैं, जिनका वर्णन इस प्रकार है : जो अपने असली स्वरूप को पहचानता है और अपने विशिष्ट कार्य में दृढ़ रहता है, जो आध्यात्मिक ज्ञान में सदैव सुखी रहता है, वह स्वरूप ब्रह्मचारी कहलाता है। ब्रह्मज्योति का ज्ञाता तथा नित्य योगाभ्यास करने वाला प्रकाश ब्रह्मचारी कहलाता है। जो परम ज्ञान प्राप्त करके सदैव परम सत्य, ज्ञान,

असीम तथा ब्रह्मज्योति का सदैव ध्यान करता है और सदैव अपने आपको दिव्य आनन्द में रखता है, वह आनन्द-ब्रह्मचारी कहलाता है। जो पदार्थ तथा आत्मा का भेद जानता है, जो भौतिक विकारों से व्याकुल नहीं होता तथा जो असीम, अव्यय, कल्याणप्रद ब्रह्मज्योति का ध्यान करता है, वह प्रथम कोटि का विद्वान ब्रह्मचारी होता है, वह *चैतन्य* कहलाता है।

जब सार्वभौम भट्टाचार्य गोपीनाथ आचार्य से श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास सम्प्रदाय के बारे में जिज्ञासा कर रहे थे, तो उन्हें उनका प्रथम नाम *श्रीकृष्ण* तो अच्छा लगा, किन्तु *चैतन्य* उपनाम अच्छा नहीं लगा, क्योंकि यह भारती सम्प्रदाय के ब्रह्मचारी का नाम है। इसीलिए उन्होंने सुझाव दिया कि महाप्रभु को सरस्वती सम्प्रदाय में उन्नति कर देनी चाहिए। किन्तु गोपीनाथ आचार्य ने इंगित किया कि महाप्रभु किसी बाह्य औपचारिकता पर निर्भर नहीं हैं। गोपीनाथ आचार्य को पूर्ण विश्वास था कि श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं, अतएव वे किसी बाह्य औपचारिकता या विधान से स्वतन्त्र हैं। यदि कोई शुद्ध भक्ति करना चाहता है, तो उसे भारती या सरस्वती जैसी उपाधियों से युक्त श्रेष्ठता की आवश्यकता नहीं रहती।

ভট্টাচার্য কহে,—'ইঁহার প্রৌঢ় যৌবন ।
কেমতে সন্ন্যাস-ধর্ম হইবে রক্ষণ ॥৭৪॥

भट्टाचार्य्य कहे,—'इँहार प्रौढ़ यौवन ।
केमते सन्यास-धर्म हइबे रक्षण ॥७४॥

भट्टाचार्य्य कहे—सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; **इँहार**—उनका; **प्रौढ़**—पूर्ण; **यौवन**—यौवन; **केमते**—कैसे; **सन्यास-धर्म**—संन्यास धर्म; **हइबे**—होगा; **रक्षण**—संरक्षण।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने पूछा, "श्री चैतन्य महाप्रभु तो अपनी पूर्ण यौवनावस्था में हैं। वे संन्यास के नियमों का किस तरह पालन कर पायेंगे?

নিরন্তর ইঁহাকে বেদান্ত শুনাইব ।
বৈরাগ্য-অদ্বৈত-মার্গে প্রবেশ করাইব ॥৭৫॥

निरन्तर इँहाके वेदान्त शुनाइब ।
वैराग्य-अद्वैत-मार्गे प्रवेश कराइब ॥ ७५ ॥

निरन्तर—निरन्तर; **इँहाके**—उनको; **वेदान्त**—वेदान्त दर्शन; **शुनाइब**—मैं सुनाऊँगा; **वैराग्य**—वैराग्य का; **अद्वैत**—अद्वैत के; **मार्गे**—पथ पर; **प्रवेश**—प्रवेश; **कराइब**—मैं उनसे करवाऊँगा।

अनुवाद

"मैं इन्हें निरन्तर वेदान्त दर्शन सुनाऊँगा, जिससे वे अपने वैराग्य में स्थिर रहें और इस तरह अद्वैत मार्ग में प्रवेश कर सकें।"

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य के अनुसार वेदान्त दर्शन के अनुशीलन से संन्यासियों को इन्द्रियतृप्ति से विरक्त रहने में सहायता मिलती है। इस तरह संन्यासी अपने *कौपीन* की मर्यादा-रक्षा कर सकता है। मनुष्य को इन्द्रिय-निग्रह के साथ मन-निग्रह का अभ्यास करना चाहिए और वाणी, मन, क्रोध, जीभ, उदर तथा उपस्थ—इन छह वेगों का दमन करना होता है। तभी वह भगवद्भक्ति को समझ सकता है और आदर्श संन्यासी बन सकता है। इसके लिए ज्ञान का अनुशीलन तथा वैराग्य आवश्यक है। भौतिक इन्द्रियतृप्ति में लिप्त रहकर संन्यास आश्रम की रक्षा नहीं की जा सकती। सार्वभौम भट्टाचार्य ने सुझाया कि वैराग्य की शिक्षा से श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रौढ़ तरुणावस्था की इच्छाओं के प्रभाव से बचाये जा सकते हैं।

कहेन यदि, पुनरपि योग-पट्ट दिया ।
संस्कार करिये उत्तम-सम्प्रदाये आनिया' ॥ ७६ ॥

कहेन यदि, पुनरपि योग-पट्ट दिया ।
संस्कार करिये उत्तम-सम्प्रदाये आनिया' ॥ ७६ ॥

कहेन—कहें; **यदि**—यदि; **पुनरपि**—फिर; **योग-पट्ट दिया**—उनको योगी के वस्त्र (केसरी वस्त्र) देकर; **संस्कार**—संस्कार की प्रक्रिया; **करिये**—मैं करूँगा; **उत्तम**—उत्तम; **सम्प्रदाये**—सम्प्रदाय में; **आनिया**—लाकर।

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने सुझाया, "यदि श्री चैतन्य महाप्रभु चाहें,

तो मैं उन्हें गेरुआ वस्त्र प्रदान करके एवं उनका पुनः संस्कार कराकर उच्च कोटि के सम्प्रदाय में ले आऊँगा।"

तात्पर्य

भट्टाचार्य को अच्छा नहीं लगा कि महाप्रभु भारती या पुरी सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहें, अतएव वे उन्हें सरस्वती सम्प्रदाय में प्रतिष्ठित करना चाह रहे थे। वस्तुतः वे श्री चैतन्य महाप्रभु की स्थिति से परिचित नहीं थे। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में चैतन्य महाप्रभु किसी उच्च या निम्न सम्प्रदाय पर आश्रित नहीं थे। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तो सभी परिस्थितियों में सर्वोच्च पद पर ही बने रहते हैं।

শুনি' গোপীনাথ-মুকুন্দ দুঁহে দুঃখী হৈলা ।
গোপীনাথাচার্য কিছু কহিতে লাগিলা ॥৭৭॥

শুনি' গোপীনাথ-মুকুন্দ দুঁহে দুঃখী হৈলা ।
গোপীনাথাচার্য্য কিছু কহিতে লাগিলা ॥৭৭॥

শুনি'—सुनकर; **গোপীনাথ-মুকুন্দ**—गोपीनाथ आचार्य एवं मुकुन्द दत्त; **দুঁহে**—दोनों; **দুঃখী**—दुःखी; **হৈলা**—हो गये; **গোপীনাথ-আচার্য্য**—गोपीनाथ आचार्य; **কিছু**—कुछ; **কহিতে**—कहने; **লাগিলা**—लगे।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य तथा मुकुन्द दत्त यह सुनकर बहुत दुःखी हुए। अतः गोपीनाथ आचार्य ने सार्वभौम भट्टाचार्य को इस प्रकार सम्बोधित किया।

'ভট্টাচার্য' তুমি ইঁহার না জান মহিমা ।
ভগবত্তা-লক্ষণের ইঁহাতেই সীমা ॥৭৮॥

'ভট্টাচার্য্য' তুমি ইঁহার না জান মহিমা ।
ভগবত্তা-লক্ষণের ইঁহাতেই সীমা ॥৭৮॥

ভট্টাচার্য্য—मेरे प्रिय भट्टाचार्य; **তুমি**—आप; **ইঁহার**—भगवान् चैतन्य महाप्रभु की; **না**—नहीं; **জান**—जानते; **মহিমা**—महिमा; **ভগবত্তা**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने की; **লক্ষণের**—लक्षणों की; **ইঁহাতেই**—उनमें ; **সীমা**—सर्वोच्च मात्रा।

अनुवाद

"हे भट्टाचार्य, आप श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमा को नहीं जानते। इनमें भगवत्ता के समस्त लक्षण अपनी चरम सीमा को प्राप्त हैं।"

तात्पर्य

चूँकि भट्टाचार्य निर्विशेषवादी थे, अतएव उन्हें निर्विशेष तेज के परे परम सत्य का कोई ज्ञान नहीं था। किन्तु गोपीनाथ आचार्य ने उन्हें बतलाया कि श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। परम सत्य को जानने वाले इसकी तीन अवस्थाओं से परिचित होते हैं, जिनकी व्याख्या *श्रीमद्भागवत* (१.२.११) में की गई है :

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

"जिन्हें अद्वैत परम सत्य का ज्ञान है, वे स्पष्ट रूप से जानते हैं कि ब्रह्म क्या है, परमात्मा क्या हैं और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् क्या हैं।" पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण होते हैं—*षड् ऐश्वर्यपूर्ण।* गोपीनाथ आचार्य ने दृढ़तापूर्वक बतलाया कि श्री चैतन्य महाप्रभु में ये छहों ऐश्वर्य पूर्णरूपेण विद्यमान हैं।

তাহাতে বিখ্যাত ইঁহো পরম-ঈশ্বর ।
অজ্ঞ-স্থানে কিছু নহে বিজ্ঞের গোচর' ॥৭৯॥

তাহাতে বিখ্যাত ইঁহো পরম-ঈশ্বর ।
অজ্ঞ-স্থানে কিছু নহে বিজ্ঞের গোচর' ॥ ৭৯ ॥

তাহাতে—अतः; **বিখ্যাত**—प्रसिद्ध; **ইঁহো**—चैतन्य महाप्रभु; **পরম-ঈশ্বর**—परम ईश्वर; **অজ্ঞ-স্থানে**—अज्ञानी व्यक्ति के समक्ष; **কিছু**—कुछ; **নহে**—नहीं; **বিজ্ঞের**—विद्वान व्यक्ति का; **গোচর**—ज्ञान।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने आगे कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में विख्यात हैं। इस विषय से अनजान व्यक्ति तत्त्ववेताओं के निर्णय को अत्यन्त कठिनाई से समझ पाते हैं।"

শিষ্য-গণ কহে,—'ঈশ্বর কহ কোন্‌প্রমাণে' ।
আচার্য কহে,—'বিজ্ঞ-মত ঈশ্বর-লক্ষণে' ॥ ৮০ ॥

শিষ্য-গণ কহে,—'ঈশ্বর কহ কোন্‌প্রমাণে' ।
আচার্য্য কহে,—'বিজ্ঞ-মত ঈশ্বর-লক্ষণে' ॥ ৮০ ॥

शिष्य-गण कहे—सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्यों ने कहा; **ईश्वर कह**—आप कहते हैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **कोन् प्रमाणे**—किस प्रमाण से; **आचार्य्य कहे**—गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; **विज्ञ-मत**—अधिकारियों के कथन; **ईश्वर-लक्षणे**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् को समझने में।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्यों ने प्रतिकार करते हुए पूछा, "आप किस साक्ष्य के आधार पर यह निर्णय कर रहे हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु परमेश्वर हैं?" गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "इसका प्रमाण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जानने वाले प्रामाणिक आचार्यों के कथन हैं।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के समय से भारत में ऐसे अनेक छद्म अवतार थे, जिनमें प्रामाणिक लक्षण नहीं पाये जाते। पाँच सौ वर्ष पूर्व सार्वभौम भट्टाचार्य के विद्वान शिष्यों ने जब गोपीनाथ आचार्य से साक्ष्य देने के लिए कहा था, तो वे बिल्कुल ठीक कह रहे थे। यदि कोई व्यक्ति अपने आपको या किसी अन्य को ईश्वर या ईश्वर का अवतार बतलाता है, तो उसे अपने इस दावे को सिद्ध करने के लिए शास्त्र से साक्ष्य देने चाहिए। अतएव भट्टाचार्य के शिष्यों का अनुरोध उचित है। दुर्भाग्यवश आज के समय में किसी को भी शास्त्रों का सन्दर्भ दिये बिना ईश्वर के अवतार के रूप में प्रस्तुत करना प्रचलित है। किन्तु बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि किसी व्यक्ति को ईश्वर का अवतार मानने के पहले उससे साक्ष्य माँगे। जब सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्यों ने गोपीनाथ आचार्य को चुनौती दी, तो गोपीनाथ ने तुरन्त उचित उत्तर दिया, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने के लिए हमें महापुरुषों के वचन सुनने चाहिए।" ब्रह्मा, नारद, व्यासदेव, असित तथा अर्जुन जैसे महापुरुषों के कथनों से ही कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसी तरह उन्हीं महापुरुषों के कथनों

से ही श्री चैतन्य महाप्रभु भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसकी व्याख्या आगे की जायेगी।

शिष्य कहे,—'ईश्वर-तत्त्व साधि अनुमाने' ।
आचार्य कहे,—'अनुमाने नहे ईश्वर-ज्ञाने ॥ ८१॥
शिष्य कहे,—'ईश्वर-तत्त्व साधि अनुमाने' ।
आचार्य्य कहे,—'अनुमाने नहे ईश्वर-ज्ञाने ॥ ८१ ॥

शिष्य कहे—शिष्यों ने कहा; **ईश्वर-तत्त्व**—परम सत्य का ज्ञान; **साधि**—निकालते हैं, उद्धृत करते हैं; **अनुमाने**—अनुमान के विवरण से; **आचार्य्य कहे**—गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; **अनुमाने**—अनुमान से; **नहे**—नहीं होता है; **ईश्वर-ज्ञाने**—परमेश्वर का सच्चा ज्ञान।

अनुवाद

भट्टाचार्य के शिष्यों ने कहा, "हम तार्किक अनुमान के द्वारा परम सत्य का ज्ञान प्राप्त करते हैं।" गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में वास्तविक ज्ञान इस प्रकार के अनुमान तथा तर्क से प्राप्त नहीं किया जा सकता।"

तात्पर्य

विशेषतया मायावादी दार्शनिक परम सत्य के विषय में अनुमान लगाते हैं। वे तर्क करते हैं कि हम इस भौतिक जगत् की हर वस्तु को सृजित (उत्पन्न) हुई अनुभव करते हैं। यदि हम किसी भी वस्तु का इतिहास खोजें, तो उसका एक स्रष्टा मिलेगा। अतएव इस विराट जगत् का कोई स्रष्टा होना चाहिए। ऐसे तर्क से वे इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इस विराट जगत् की सृष्टि किसी महान् शक्ति द्वारा की गई है। मायावादी ईस महान् शक्ति को एक व्यक्ति के रूप में स्वीकार नहीं करते। उनके दिमाग में यह बात नहीं समाती कि यह विराट जगत् एक व्यक्ति की सृष्टि हो सकता है। इस शंका का कारण यह है कि जब वे किसी व्यक्ति के विषय में सोचते हैं, तो वे भौतिक जगत् के ही भीतर के सीमित शक्ति वाले किसी व्यक्ति को सोचते हैं। कभी-कभी मायावादी दार्शनिक भगवान् कृष्ण या भगवान् राम को भगवान् के रूप में स्वीकार करते हैं, किन्तु वे भगवान् को ऐसे व्यक्ति मानते हैं जिनका शरीर भौतिक है। मायावादी यह

समझ ही नहीं पाते कि भगवान् कृष्ण का शरीर आध्यात्मिक है। वे कृष्ण को ऐक महापुरुष—एक मनुष्य मानते हैं, जिनके भीतर परम निर्विशेष शक्ति ब्रह्म है। इसलिए अन्ततः वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि निर्विशेष ब्रह्म ही सर्वोच्च है, साकार कृष्ण नहीं। मायावादी दर्शन का यही आधार है। किन्तु शास्त्रों से हमें ज्ञात होता है कि ब्रह्मज्योति तो कृष्ण के शरीर की ही किरणें हैं :

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि
कोटिष्वशेषवसुधादि विभूतिभिन्नम्।
तद् ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की सेवा करता हूँ, जिनके दिव्य शरीर का तेज ब्रह्मज्योति कहलाता है। वह ब्रह्मज्योति, जो असीम, अगाध तथा सर्वव्यापी है, अनन्त ग्रहों की सृष्टि का कारण है, जिनमें तरह-तरह की जलवायु है तथा जो जीवन की विशिष्ट दशाओं से युक्त है।" (*ब्रह्म-संहिता* ५.४०)

मायावादी दार्शनिक वैदिक साहित्य का अध्ययन करते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि परम सत्य के साक्षात्कार की अन्तिम अवस्था पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। वे इस तथ्य को तो स्वीकार करते हैं कि इस विराट जगत् का कोई स्रष्टा है, किन्तु वह *अनुमान* है। मायावादियों का तर्क वैसा ही है, जैसाकि किसी पहाड़ी के ऊपर धुआँ देखकर आग लगने का अनुमान लगाना। जब किसी ऊँची पहाड़ी के ऊपर जंगल में आग लगती है, तो सबसे पहले धुँआ ही दिखता है। यह सभी जानते हैं कि धुँआ तभी उत्पन्न होता है, जब अग्नि रहती है। जिस प्रकार धुएँ से अग्नि का अनुमान लगाया जा सकता है, उसी तरह मायावादी दार्शनिक इस विराट जगत् को देखकर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इसका कोई स्रष्टा होना चाहिए।

सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्य श्री चैतन्य महाप्रभु को ही इस जगत् के वास्तविक स्रष्टा मानने के लिए प्रमाण चाहते थे। केवल तभी वे उन्हें सृष्टि के आदि कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार कर सकेंगे। गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को अनुमान से नहीं समझे जा सकते। जैसे भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* (७.२५) में कहते हैं :

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

"मैं मूर्खों तथा बुद्धिहीनों को कभी नहीं दिखता। उनके लिए तो मैं अपनी नित्य सृजनात्मक शक्ति (योगमाया) से आवृत रहता हूँ, अतएव भ्रमित जगत् मुझ अजन्मा तथा अव्यय को नहीं जान पाता।" पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को अधिकार है कि वे अभक्तों के समक्ष प्रकट न हों। उन्हें केवल प्रामाणिक भक्त ही समझ सकते हैं। भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* में अन्यत्र (१८.५५) कहते हैं— *भक्त्या मामभिजानाति*—"मुझे केवल भक्ति द्वारा जाना जा सकता है।" *भगवद्गीता* के चतुर्थ अध्याय (४.३) में भगवान् कृष्ण कहते हैं— *भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥* यहाँ भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि वे उसे *भगवद्गीता* का रहस्य बतला रहे हैं, क्योंकि वह उनका भक्त है। अर्जुन न तो संन्यासी था, न वेदान्ती, न ही ब्राह्मण। किन्तु वह कृष्ण-भक्त था। निष्कर्ष यह है कि हमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को भक्तों से समझना होगा। श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं कहते हैं— *गुरुकृष्णप्रसादे पाय भक्तिलताबीज।* (*चैतन्य-चरितामृत, मध्य* १९.१५१)

यह दिखाने के लिए और साक्ष्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं कि भक्त या कृष्ण की कृपा के बिना मनुष्य यह नहीं समझ सकता कि कृष्ण क्या हैं और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् क्या हैं। इसकी पुष्टि अगले श्लोक में हुई है।

अनुमान प्रमाण नहे ईश्वर-तत्त्व-ज्ञाने ।
कृपा विना ईश्वरेरे केह नाहि जाने ॥८२॥

अनुमान प्रमाण नहे ईश्वर-तत्त्व-ज्ञाने ।
कृपा विना ईश्वरेरे केह नाहि जाने ॥८२॥

अनुमान प्रमाण—अनुमान से प्रमाण; **नहे**—नहीं; **ईश्वर-तत्त्व-ज्ञाने**—परम सत्य अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने के लिए; **कृपा विना**—कृपा के बिना; **ईश्वरेरे**—परम भगवान् को; **केह**—कोई भी; **नाहि**—नहीं; **जाने**—जानता।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने आगे कहा, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को केवल उनकी कृपा द्वारा ही जाने जा सकते हैं, अनुमान द्वारा नहीं।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को किसी भौतिक तर्क के द्वारा नहीं समझे जा सकते। मूर्ख लोग जादू का खेल देखकर मुग्ध हो जाते हैं और योगशक्ति से सम्पन्न कुछेक अद्‌भुत कार्य देखकर ही वे जादूगर को भगवान् या अवतार मान बैठते हैं। किन्तु यह साक्षात्कार की विधि नहीं है। न ही मनुष्य को ईश्वर के अवतार या भगवान् के विषय में अनुमान लगाना चाहिए। मनुष्य को प्रामाणिक व्यक्ति से या स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सीखना होता है, जैसाकि कृष्ण की कृपा से अर्जुन ने किया। स्वयं कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में अपनी शक्तियों के विषय में संकेत भी करते हैं। केवल शास्त्रों तथा महाजनों द्वारा प्रस्तुत प्रमाण के आधार पर ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने चाहिए। भक्ति द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने के लिए भगवत्कृपा प्राप्त होनी आवश्यक है।

ঈশ্বরের কৃপা-লেশ হয় ত' যাহারে ।
সেই ত' ঈশ্বর-তত্ত্ব জানিবারে পারে ॥ ৮৩ ॥

ईश्वरेर कृपा-लेश हय त' याहारे ।
सेइ त' ईश्वर-तत्त्व जानिबारे पारे ॥ ८३ ॥

ईश्वरेर—परम भगवान् की; **कृपा-लेश**—लेशमात्र कृपा; **हय**—होती है; **त'**—निश्चित रूप से; **याहारे**—जिस पर; **सेइ त'**—वह अवश्य; **ईश्वर-तत्त्व**—परम सत्य; **जानिबारे**—जानने में; **पारे**—सक्षम है।

अनुवाद

आचार्य ने आगे कहा, "यदि किसी को भक्ति द्वारा भगवान् की लेशमात्र भी कृपा प्राप्त होती है, तो वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तत्त्व से समझ सकता है।

অথাপি তে দেব পদাম্বুজ-দ্বয়-
প্রসাদ-লেশানুগৃহীত এব হি ।
জানাতি তত্ত্বং ভগবন্মহিম্নো
ন চান্য একোঽপি চিরং বিচিন্বন্ ॥ ৮৪ ॥

अथापि ते देव पदाम्बुज-द्वय-
प्रसाद-लेशानुगृहीत एव हि ।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥ ८४॥

अथ—इसलिए; **अपि**—निस्सन्देह; **ते**—आपका; **देव**—मेरे स्वामी; **पद-अम्बुज-द्वय**—दोनों चरणकमलों की; **प्रसाद**—कृपा का; **लेश**—थोड़ा सा भाग भी; **अनुगृहीतः**—प्राप्त होता है; **एव**—अवश्य; **हि**—निस्सन्देह; **जानाति**—मनुष्य जानता है; **तत्त्वम्**—सत्य को; **भगवत्**—भगवान् के; **महिम्नः**—महिमा का; **न**—कभी नहीं; **च**—और; **अन्यः**—अन्य; **एकः**—एक; **अपि**—यद्यपि; **चिरम्**—चिरकाल तक; **विचिन्वन्**—चिन्तन द्वारा।

अनुवाद

"'हे प्रभु, यदि आप के चरणकमलों की रंचमात्र भी कृपा किसी पर हो जाये, तो वह आपकी महानता को समझ सकता है। किन्तु जो लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने के लिए तर्कवितर्क करते हैं, वे अनेक वर्षों तक वेदों का अध्ययन करते रहने पर भी आपको जानने में अक्षम रहते हैं।'"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.१४.२९) का है। *ब्रह्म-संहिता* (५.३३) का कथन है—*वेदेषु दुर्लभम् अदुर्लभम् आत्मभक्तौ।* यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ज्ञान के चरम लक्ष्य हैं (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*), किन्तु जो शुद्ध भक्त नहीं है और भगवान् की सेवा में नहीं लगा हुआ है, वह उन्हें समझ नहीं सकता। अतः ब्रह्माजी इसकी पुष्टि करते हैं—*वेदेषु दुर्लभम्*—"मात्र स्वाध्याय द्वारा भगवान् को समझ पाना अत्यन्त कठिन है।" *अदुर्लभम् आत्मभक्तौ*—"किन्तु भक्तों के लिए भगवान् को समझना अत्यन्त आसान है।" भगवान् *अजित* कहलाते हैं अर्थात् वे जीते नहीं जा सकते। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को कोई जीत नहीं सकता, किन्तु वे अपने भक्तों द्वारा पराजित किये जाने के लिए प्रस्तुत रहते हैं। यही उनका स्वभाव है। जैसाकि *पद्म पुराण* में कहा गया है :

अतः श्रीकृष्णनामादि
न भवेद् ग्राह्यम् इन्द्रियैः।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ
स्वयमेव स्फुरत्यदः ॥

भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् अपने भक्तों के समक्ष प्रकट होते हैं। उन्हें समझने की यही विधि है।

गोपीनाथ आचार्य द्वारा उद्धृत किया गया *श्रीमद्भागवतम्* का यह श्लोक ब्रह्माजी ने भगवान् कृष्ण से पराजित होने पर कहा था। ब्रह्माजी ने कृष्ण की शक्ति की परीक्षा करने के लिए सारे बछड़ों तथा ग्वालबालों को चुरा लिया था। ब्रह्माजी ने यह स्वीकार किया कि इस ब्रह्माण्ड में उनकी अपनी असाधारण शक्ति कृष्ण की असीम शक्ति के समक्ष पूर्णतया तुच्छ है। यदि कृष्ण को समझने में ब्रह्माजी तक भूल कर सकते हैं, तो साधारण व्यक्तियों के विषय में क्या कहा जाये, जिन्हें कृष्ण के विषय में गलत भ्रान्तियाँ हैं या अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए वे किसी को कृष्ण का तथाकथित अवतार कहकर स्थापित करते हैं।

यद्यपि जगदगुरु तुमि——शास्त्र-ज्ञानवान् ।
पृथिवीते नाहि पण्डित तोमार समान ॥८५॥
ईश्वरेर कृपा-लेश नाहिक तोमाते ।
अतएव ईश्वर-तत्त्व ना पार जानिते ॥८६॥

यद्यपि जगद्गुरु तुमि——शास्त्र-ज्ञानवान् ।
पृथिवीते नाहि पण्डित तोमार समान ॥ ८५ ॥
ईश्वरेर कृपा-लेश नाहिक तोमाते ।
अतएव ईश्वर-तत्त्व ना पार जानिते ॥ ८६ ॥

यद्यपि—यद्यपि; **जगत्-गुरु**—जगद् गुरु; **तुमि**—आप; **शास्त्र-ज्ञानवान्**—वैदिक ज्ञान में निपुण; **पृथिवीते**—इस पृथ्वी पर; **नाहि**—नहीं है; **पण्डित**—पण्डित, विद्वान; **तोमार**—आपके; **समान**—समान; **ईश्वरेर**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की; **कृपा**—कृपा; **लेश**—तनिक; **नाहिक**—नहीं है; **तोमाते**—आप पर; **अतएव**—अतएव; **ईश्वर-तत्त्व**—परम सत्य (भगवत्-तत्त्व); **ना पार**—सक्षम नहीं; **जानिते**—जानना।

अनुवाद

तब गोपीनाथ आचार्य ने सार्वभौम भट्टाचार्य को सम्बोधित किया, "आप महान् पंडित हैं और अनेक शिष्यों के गुरु हैं। निस्सन्देह, आपके

समान इस पृथ्वी पर अन्य कोई विद्वान नहीं है। फिर भी आप भगवान् की रंचमात्र कृपा से भी वंचित हैं, अतएव आप उन्हें अपने घर में पाकर भी नहीं समझ सकते।

তোমার নাহিক দোষ, শাস্ত্রে এই কহে ।
পাণ্ডিত্যাদ্যে ঈশ্বর-তত্ত্ব-জ্ঞান কভু নহে' ॥ ৮৭॥

तोमार नाहिक दोष, शास्त्रे एइ कहे ।
पाण्डित्याद्ये ईश्वर-तत्त्व-ज्ञान कभु नहे' ॥ ८७॥

तोमार—आपका; **नाहिक**—नहीं है; **दोष**—दोष; **शास्त्रे**—शास्त्र; **एइ**—यह; **कहे**—बताते हैं; **पाण्डित्य-आद्ये**—केवल पाण्डित्य से; **ईश्वर-तत्त्व-ज्ञान**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ज्ञान; **कभु**—कभी; **नहे**—नहीं होता।

अनुवाद

"यह आपका दोष नहीं है; यह तो शास्त्रों का निर्णय है। आप केवल पाण्डित्य से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नहीं समझ सकते।"

तात्पर्य

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण श्लोक है। बड़े-बड़े पंडित तक कृष्ण को नहीं समझ सकते, फिर भी वे *भगवद्गीता* पर टीका करने का दुस्साहस करते हैं। *भगवद्गीता* पढ़ने का अर्थ है कृष्ण को समझना, फिर भी हम देखते हैं कि अनेक पण्डित कृष्ण को समझने का प्रयास करने में भारी भूल करते हैं। वैदिक साहित्य में गोपीनाथ आचार्य के कथन की कई जगह पुष्टि हुई है। *कठ उपनिषद्* (१.२.२३) में कहा गया है :

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

कठ उपनिषद् (१.२.९) में यह भी कहा गया है :

नैषा तर्केण मतिरापनेया
प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।

यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि
त्वाहं नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा॥

वास्तव में, भगवान् अर्थात् परमात्मा केवल व्याख्या, तर्क तथा पाण्डित्य से प्राप्त नहीं किये जा सकते। कोई उन्हें केवल अपने मस्तिष्क के बल से नहीं समझ सकता। यहाँ तक कि सारे वैदिक साहित्य के अध्ययन के द्वारा भी भगवान् नहीं समझे जा सकते। किन्तु यदि भगवान् प्रसन्न होकर रंच-भर भी कृपा कर दें, तो मनुष्य उन्हें समझ सकता है। किन्तु उनकी कृपा के पात्र हैं कौन? केवल भक्तगण। केवल वे ही समझ सकते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् क्या हैं। जब भगवान् निष्ठावान भक्त की सेवा से प्रसन्न हो जाते हैं, तब वे स्वयं उसके समक्ष प्रकट होते हैं। *स्वयमेव स्फुरत्यदः।* न तो वेदों के कथन से भगवान् को समझने का प्रयास करना चाहिए, न ही तर्क द्वारा इन कथनों की व्यर्थ में निन्दा करनी चाहिए।

সার্বভৌম কহে,—আচার্য, কহ সাবধানে ।
তোমাতে ঈশ্বর-কৃপা ইথে কি প্রমাণে ॥৮৮॥

सार्वभौम कहे,—आचार्य, कह सावधाने ।
तोमाते ईश्वर-कृपा इथे कि प्रमाणे ॥८८॥

सार्वभौम कहे—सर्वाभौम भट्टाचार्य ने कहा; **आचार्य**—प्रिय गोपीनाथ आचार्य; **कह**—कृपया बोलो; **सावधाने**—अत्यन्त सावधानीपूर्वक; **तोमाते**—आपको; **ईश्वर-कृपा**—भगवत् कृपा; **इथे**—इस विषय में; **कि प्रमाणे**—किस प्रमाण से।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "हे गोपीनाथ आचार्य, कृपया आप सावधानी से कहें। आपके पास इसका क्या प्रमाण है कि आपको भगवत्कृपा प्राप्त हो चुकी है?"

আচার্য কহে,—"বস্তু-বিষয়ে হয় বস্তু-জ্ঞান ।
বস্তু-তত্ত্ব-জ্ঞান হয় কৃপাতে প্রমাণ ॥৮৯॥

आचार्य कहे,—"वस्तु-विषये हय वस्तु-ज्ञान ।
वस्तु-तत्त्व-ज्ञान हय कृपाते प्रमाण ॥८९॥

आचार्य्य कहे—गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया; **वस्तु-विषये**—परम पूर्ण के बारे; **हय**—है; **वस्तु-ज्ञान**—परम का ज्ञान; **वस्तु-तत्त्व**—परम सत्य का; **ज्ञान**—ज्ञान; **हय**—है; **कृपाते**—कृपा का; **प्रमाण**—प्रमाण।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "सर्वाधिक कल्याणकारी परम सत्य का ज्ञान ही परमेश्वर की कृपा का प्रमाण है।"

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य ने अपने बहनोई श्री गोपीनाथ आचार्य से पूछा, "भले ही भगवान् ने मुझ पर कृपा न की हो, किन्तु इसका क्या प्रमाण है कि उन्होंने तुम पर कृपा की है? कृपया इस बारे में हमें बताएँ।" इस प्रश्न के उत्तर में गोपीनाथ आचार्य ने कहा कि परम कल्याणकारी परम सत्य तथा उनकी विभिन्न शक्तियाँ अभिन्न हैं। अतएव उनकी विभिन्न शक्तियों की अभिव्यक्ति से परम सत्य को समझे जा सकते हैं। परम सत्य में एक ही जगह सारी शक्तियाँ रहती हैं। विभिन्न गुणों से युक्त होकर परम सत्य आदि वस्तु हैं—*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।*

इस तरह वेदों का कथन है कि परम सत्य विभिन्न शक्तियों से युक्त हैं। जब कोई परम सत्य की शक्तियों के गुणों को समझता है, तो वह परम सत्य से अवगत हो जाता है। भौतिक स्तर पर भी कोई व्यक्ति किसी वस्तु को उसके लक्षणों की अभिव्यक्ति से जान सकता है। उदाहरणार्थ, जब ऊष्मा होती है, तो यह समझा जाता है कि यह अग्नि के कारण है। अग्नि की ऊष्मा का अनुभव प्रत्यक्ष किया जाता है। भले ही अग्नि न दिखे, किन्तु ऊष्मा के अनुभव से अग्नि को खोजा जा सकता है। इसी तरह यदि परम सत्य के गुणों का किसी को अनुभव हो सके, तो यह समझना चाहिए कि उसने भगवत्कृपा से परम सत्य के तथ्य को समझ लिया है।

भगवद्गीता (७.२५) में कहा गया है—*नाहं प्रकाशः सर्वस्य।* यह तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अधिकार में है कि वे हर एक को दर्शन न दें। *सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः*—"जब भगवान् भक्त की सेवा से पूरी तरह से सन्तुष्ट हो जाते हैं, तब वे भक्त के समक्ष प्रकट होते हैं।" अतएव

भगवान् की कृपा बिना उन्हें समझे नहीं जा सकते। परम सत्य को चिन्तन द्वारा नहीं समझे जा सकते—यही *भगवद्गीता* का निर्णय है।

ইঁহার শরীরে সব ঈশ্বর-লক্ষণ ।
মহা-প্রেমাবেশ তুমি পাঞাছ দর্শন ॥৯০॥

इँहार शरीरे सब ईश्वर-लक्षण ।
महा-प्रेमावेश तुमि पाञाछ दर्शन ॥ ९० ॥

इँहार—उनके; **शरीरे**—शरीर में; **सब**—सब; **ईश्वर-लक्षण**—परमेश्वर के लक्षण; **महा-प्रेम-आवेश**—दिव्य प्रेम में लीनता; **तुमि**—आपने; **पाञाछ**—पाया है; **दर्शन**—देखा है।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने आगे कहा, "जब श्री चैतन्य महाप्रभु भावाविष्ट थे, तो उनके शरीर में आपने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के लक्षण देखे हैं।

তবু ত' ঈশ্বর-জ্ঞান না হয় তোমার ।
ঈশ্বরের মায়া এই—বলি ব্যবহার ॥৯১॥

तबु त' ईश्वर-ज्ञान ना हय तोमार ।
ईश्वरेर माया एइ—बलि व्यवहार ॥ ९१ ॥

तबु त'—फिर भी; **ईश्वर-ज्ञान**—परमेश्वर ज्ञान; **ना**—नहीं; **हय**—हुआ; **तोमार**—आपको; **ईश्वरेर**—भगवान् की; **माया**—माया; **एइ**—इसे; **बलि**—कही जाती है; **व्यवहार**—सामान्य भाषा में।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के लक्षणों को प्रत्यक्ष देखने के बाद भी आप उन्हें नहीं समझ सके। इसे ही सामान्यतया माया (भ्रम) कहा जाता है।

तात्पर्य

गोपीनाथ आचार्य यह इंगित करते हैं कि सार्वभौम भट्टाचार्य तो पहले ही श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में भाव के अद्भुत लक्षण देख चुके थे।

प्रेम-भाव के ये अद्भुत लक्षण परम पुरुष को सूचित करने वाले थे, किन्तु भट्टाचार्य इन सारे लक्षणों को देखने के बाद भी भगवान् की दिव्य प्रकृति

को नहीं समझ पाये। वे भगवान् की लीलाओं को भौतिक मान रहे थे। ऐसा निश्चित रूप से माया के कारण था।

देखिले ना देखे तारे बहिर्मुख जन" ।
शुनि' हासि' सार्वभौम बलिल वचन ॥९२॥

देखिले ना देखे तारे बहिर्मुख जन" ।
शुनि' हासि' सार्वभौम बलिल वचन ॥ ९२ ॥

देखिले—देखने के बाद भी; **ना**—नहीं; **देखे**—देखता है; **तारे**—परम पुरुष; **बहिः-मुख जन**—बहिरंगा शक्ति से प्रभावित व्यक्ति; **शुनि'**—यह सुनकर; **हासि'**—मुस्कुराकर; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **बलिल**—कहा; **वचन**—वचन।

अनुवाद

"बहिरंगा शक्ति से प्रभावित व्यक्ति बहिर्मुखजन अर्थात् संसारी व्यक्ति कहलाता है, क्योंकि देखने के बाद भी वह वास्तविक वस्तु को नहीं समझ पाता।" गोपीनाथ आचार्य के वचन सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य मुसकाये और इस प्रकार कहने लगे।

तात्पर्य

जब तक मनुष्य का हृदय स्वच्छ नहीं होता, तब तक वह अपने हृदय में भक्ति की दिव्य प्रकृति को जाग्रत नहीं कर सकता। जैसाकि भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* (७.२८) में पुष्टि की है :

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥

"जिन लोगों ने पूर्वजन्म में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं, जिनके सारे पाप नष्ट हो चुके हैं, वे मोह के द्वन्द्व से मुक्त हो जाते हैं और दृढ़तापूर्वक मेरी सेवा में लग जाते हैं।"

जब कोई वास्तव में शुद्ध भक्ति में लगा हो, तो यह समझा जाता है कि उसे अपने सारे पापकर्मों के फलों से मुक्ति मिल चुकी है। दूसरे शब्दों में यह समझना चाहिए कि भक्तगण पाप से पहले ही मुक्त हो चुके होते हैं। पापी व्यक्ति, *दुष्कृती* कभी भक्तिमय सेवा में नहीं लगता, न ही केवल पाण्डित्यपूर्ण

तर्कवितर्क से कोई भक्ति में लग सकता है। शुद्ध भक्ति करने के लिए मनुष्य को भगवत्कृपा की प्रतीक्षा करनी होती है।

ইষ্ট-গোষ্ঠী বিচার করি, না করিহ রোষ ।
শাস্ত্র-দৃষ্ট্যে কহি, কিছু না লইহ দোষ ॥৯৩॥

इष्ट-गोष्ठी विचार करि, ना करिह रोष ।
शास्त्र-दृष्ट्ये कहि, किछु ना लइह दोष ॥ ९३ ॥

इष्ट-गोष्ठी—मित्रों में वार्तालाप; **विचार**—विचार; **करि**—हम करते हैं; **ना**—नहीं; **करिह**—करो; **रोष**—क्रोध; **शास्त्र-दृष्ट्ये**—शास्त्रों की दृष्टि में; **कहि**—हम कहते हैं; **किछु**—कुछ भी; **ना**—न; **लइह**—लो; **दोष**—दोष, बुरा।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "हम तो मित्रों के बीच चर्चा कर रहे हैं और शास्त्रों में वर्णित बातों पर विचार कर रहे हैं। आप क्रुद्ध न हों। मैं तो केवल शास्त्रों के आधार पर ही बोल रहा हूँ। आप इसे अपराध न मानें।

মহা-ভাগবত হয় চৈতন্য-গোসাঞি ।
এই কলি-কালে বিষ্ণুর অবতার নাই ॥৯৪॥

महा-भागवत हय चैतन्य-गोसाञि ।
एइ कलि-काले विष्णुर अवतार नाइ ॥ ९४ ॥

महा-भागवत—एक महान् भक्त; **हय**—है; **चैतन्य-गोसाञि**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **एइ**—इस; **कलि-काले**—कलियुग में; **विष्णुर**—भगवान् विष्णु का; **अवतार**—अवतार; **नाइ**—नहीं है।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु अवश्य ही महान् एवं असाधारण भक्त हैं, किन्तु हम उन्हें भगवान् विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि शास्त्रों के अनुसार इस कलियुग में कोई अवतार नहीं होने वाला है।

অতএব 'ত্রি-যুগ' করি' কহি বিষ্ণু-নাম ।
কলি-যুগে অবতার নাহী,—শাস্ত্র-জ্ঞান ॥৯৫॥

अतएव 'त्रि-युग' करि' कहि विष्णु-नाम ।
कलि-युगे अवतार नाहि,—शास्त्र-ज्ञान ॥ ९५ ॥

अतएव—अतएव; **त्रि-युग**—तीनों युगों में प्रकट होने वाले भगवान्; **करि'**—करके; **कहि**—हम कहते हैं; **विष्णु-नाम**—भगवान् विष्णु का पावन नाम; **कलि-युगे**—कलियुग में; **अवतार**—अवतार; **नाहि**—नहीं होता; **शास्त्र-ज्ञान**—शास्त्रों का आदेश।

अनुवाद

"भगवान् विष्णु का एक नाम त्रियुग है, क्योंकि कलियुग में उनका अवतार नहीं होता है। यह प्रामाणिक शास्त्रों का निर्णय है।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु *त्रियुग* कहलाते हैं, जिसका अर्थ यह है कि वे तीन युगों में प्रकट होते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह है कि कलियुग में भगवान् प्रत्यक्ष रूप से नहीं, अपितु छद्म रूप में प्रकट होते हैं। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* (७.९.३८) में हुई है :

इत्थं नृतिर्यग्ऋषिदेवझषावतारै-
र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्॥

"हे प्रभु, आप मनुष्यों, पशुओं, देवताओं, ऋषियों, जलचरों इत्यादि के परिवारों में विविध अवतारों में विश्व के सारे शत्रुओं का वध करते हैं। इस तरह आप दिव्य ज्ञान से लोकों को प्रकाशित करते हैं। हे महापुरुष, कलियुग में आप कभी-कभी प्रच्छन्न अवतार के रूप में प्रकट होते हैं। इसीलिए आप त्रियुग कहलाते हैं।"

श्रील श्रीधर स्वामी ने भी पुष्टि की है कि कलियुग में भगवान् विष्णु प्रकट तो होते हैं, किन्तु तब वे अन्य युगों की तरह कार्य नहीं करते। भगवान् विष्णु दो उद्देश्यों से अवतरित होते हैं— *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*— अर्थात् वे अपने भक्तों के साथ लीलाएँ करने और असुरों का संहार करने आते हैं। ये उद्देश्य सत्य, त्रेता तथा द्वापर युगों में दिखाई पड़ते हैं, किन्तु कलियुग में भगवान् वेश बदलकर प्रकट होते हैं। वे प्रत्यक्ष रूप से असुरों को मारकर

श्रद्धालुओं को संरक्षण प्रदान नहीं करते। चूँकि कलियुग में भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, जबकि अन्य तीन युगों में वे प्रत्यक्ष जाने जाते हैं, अतएव उनका नाम त्रियुग है।

শুনিয়া আচার্য কহে দুঃখী হঞা মনে ।
শাস্ত্র-জ্ঞ করিঞা তুমি কর অভিমানে ॥৯৬॥

শুনিয়া আচার্য্য কহে দুঃখী হঞা মনে ।
শাস্ত্র-জ্ঞ করিঞা তুমি কর অভিমানে ॥ ৯৬ ॥

शुनिया—यह सुनकर; **आचार्य्य**—गोपीनाथ आचार्य; **कहे**—कहा; **दुःखी**—दुःखी, अप्रसन्न; **हञा**—होकर; **मने**—मन में; **शास्त्र-ज्ञ**—वैदिक शास्त्रों में दक्ष; **करिञा**—समझकर; **तुमि**—आप; **कर**—करते हो; **अभिमाने**—अभिमान।

अनुवाद

यह सुनकर गोपीनाथ आचार्य अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने भट्टाचार्य से कहा, "आप स्वयं को समस्त वैदिक शास्त्रों का ज्ञाता (शास्त्रज्ञ) मानते हैं।

ভাগবত-ভারত দুই শাস্ত্রের প্রধান ।
সেই দুই-গ্রন্থ-বাক্যে নাহি অবধান ॥৯৭॥

ভাগবত-ভারত দুই শাস্ত্রের প্রধান ।
সেই দুই-গ্রন্থ-বাক্যে নাহি অবধান ॥ ৯৭ ॥

भागवत—श्रीमद्भागवतम्; **भारत**—महाभारत; **दुइ**—दोनों; **शास्त्रेर**—सभी वैदिक शास्त्रों में ; **प्रधान**—अत्यन्त प्रमुख; **सेइ**—वे; **दुइ-ग्रन्थ**—दोनों ग्रन्थों के; **वाक्ये**—कथनों में; **नाहि**—नहीं है; **अवधान**—ध्यान, रुचि।

अनुवाद

" श्रीमद्भागवत तथा महाभारत दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वैदिक शास्त्र हैं, किन्तु आपने इनके कथनों पर कोई ध्यान नहीं दिया।

সেই দুই কহে কলিতে সাক্ষাতবতার ।
তুমি কহ,—কলিতে নাহি বিষ্ণুর প্রচার ॥৯৮॥

सेइ दुइ कहे कलिते साक्षातवतार ।
तुमि कह,—कलिते नाहि विष्णुर प्रचार ॥ ९८ ॥

सेइ—वे; **दुइ**—दोनों; **कहे**—कहते हैं; **कलिते**—इस कलियुग में; **साक्षात्**—साक्षात्; **अवतार**—अवतार; **तुमि**—आप; **कह**—कहते हो; **कलिते**—इस कलियुग में; **नाहि**—नहीं है; **विष्णुर**—भगवान् विष्णु का; **प्रचार**—प्रचार, प्राकट्य।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत तथा महाभारत में कहा गया है कि स्वयं भगवान् अवतरित होते हैं, किन्तु आप कह रहे हैं कि इस युग में भगवान् विष्णु का प्राकट्य या अवतार ही नहीं होता।

कलि-युगे लीलावतार ना करे भगवान् ।
अतएव 'त्रि-युग' करि' कहि तार नाम ॥ ९९ ॥

कलि-युगे लीलावतार ना करे भगवान् ।
अतएव 'त्रि-युग' करि' कहि तार नाम ॥ ९९ ॥

कलि-युगे—इस कलियुग में; **लीला-अवतार**—लीला अवतार; **ना**—नहीं; **करे**—होता; **भगवान्**—परम भगवान् का; **अतएव**—अतएव; **त्रि-युग**—त्रियुग; **करि'**—स्वीकार करके; **कहि**—मैं कहता हूँ; **तार नाम**—उनका पावन नाम।

अनुवाद

"इस कलियुग में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का कोई लीलावतार नहीं होता, इसीलिए वे त्रियुग कहलाते हैं और यह उनके पवित्र नामों में से एक है।"

तात्पर्य

लीलावतार का अर्थ है भगवान् का अवतार जो बिना किसी विशेष प्रयास के नाना प्रकार की लीलाएँ करता है। वे एक के बाद एक लीलाएँ करते हैं और वे सब दिव्य आनन्द से पूर्ण होती हैं तथा ये लीलाएँ परम पुरुष द्वारा पूर्णतया नियन्त्रित होती हैं। इन लीलाओं में परम पुरुष सर्वथा स्वतन्त्र होते हैं। सनातन गोस्वामी को शिक्षा देते समय (*चैतन्य-चरितामृत, मध्य* २०.२९६-२९८) श्री चैतन्य महाप्रभु ने इंगित किया कि लीलावतारों की संख्या की गिनती नहीं की जा सकती :

लीलावतार कृष्णेर न याय गणन्।
प्रधान करिया कहि दिग्दरशन॥

महाप्रभु ने सनातन से कहा, "फिर भी मैं प्रमुख लीलावतारों की व्याख्या करूँगा।"

मत्स्य, कूर्म, रघुनाथ, नृसिंह, वामन।
वराहादि—लेखा याँर ना याय गणन॥

इस तरह उन्होंने भगवान् के अवतारों की गणना की गई, जिनमें मत्स्य, कूर्म, भगवान् रामचन्द्र, नृसिंहदेव, वामनदेव तथा वराह सम्मिलित हैं। इस प्रकार असंख्य लीलावतार हैं और ये सभी अद्भुत लीलाओं का प्रदर्शन करते हैं। उदाहरणार्थ, वराह अवतार ने गर्भोदक सागर के गर्त से पूरे पृथ्वी ग्रह को बाहर निकाला। कूर्म अवतार समुद्र-मंथन के समय प्रधान आधार बने और भगवान् नृसिंह देव आधे पुरुष तथा आधे सिंह के रूप में प्रकट हुए। लीलावतारों के ये कुछ अद्भुत तथा असाधारण गुण हैं।

श्रील रूप गोस्वामी ने अपने *लघु भागवतामृत* नामक ग्रंथ में निम्नलिखित पच्चीस लीलावतारों के नाम गिनाये हैं। ये हैं—चतुःसन, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयशीर्ष (हयग्रीव), हंस, पृश्निगर्भ, ऋषभ, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, राघवेन्द्र, व्यास, बलराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि।

श्री चैतन्य महाप्रभु का उल्लेख लीलावतार के रूप में नहीं हुआ है, क्योंकि वे प्रच्छन्न अवतार (*छन्न अवतार*) हैं। इस कलियुग में लीलावतार नहीं हैं, अपितु श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में भगवान् का अवतार प्रकट है। *श्रीमद्भागवत* में इसकी व्याख्या हुई है।

प्रतियुगे करेन कृष्ण युग-अवतार ।
तर्क-निष्ठ हृदय तोमार नाहिक विचार ॥ १००॥

प्रतियुगे करेन कृष्ण युग-अवतार ।
तर्क-निष्ठ हृदय तोमार नाहिक विचार ॥ १००॥

प्रति-युगे—प्रत्येक युग में; **करेन**—लेते हैं; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **युग-अवतार**—

युग अवतार; **तर्क-निष्ठ**—तर्क के कारण निष्ठुर; **हृदय**—हृदय; **तोमार**—आपके; **नाहिक**—नहीं है; **विचार**—विचार।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने आगे कहा, "निश्चित रूप से प्रत्येक युग में एक अवतार होता है, जो युग-अवतार कहलाता है। किन्तु आपका हृदय तर्क के कारण इतना कठोर हो चुका है कि आप इन तथ्यों पर विचार नहीं कर सकते।

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनु-युगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१०१॥

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनु-युगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१०१॥

आसन्—थे; **वर्णाः**—रंग; **त्रयः**—तीन; **हि**—निस्सन्देह; **अस्य**—उनके; **गृह्णतः**—स्वीकार करना; **अनु-युगम्**—युग के अनुसार; **तनूः**—शरीर; **शुक्लः**—सफेद, श्वेत; **रक्तः**—लाल; **तथा**—तथा; **पीतः**—पीत; **इदानीम्**—इस समय; **कृष्णताम्**—काला; **गतः**—स्वीकार किया है।

अनुवाद

'"भूतकाल में युग के अनुसार आपके पुत्र के तीन विभिन्न रंगों वाले शरीर थे। ये रंग थे श्वेत, लाल तथा पीत। इस (द्वापर) युग में उन्होंने कृष्ण (श्याम) शरीर धारण किया है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.८.१३) का है, जिसे गर्गमुनि ने कृष्ण का नामकरण-संस्कार सम्पन्न करते हुए कहा था। उन्होंने कहा कि अन्य युगों में भगवान् के अवतार श्वेत, लाल तथा पीत रंग के थे। यह पीत रंग श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाने वाला है, क्योंकि उनके शरीर का वर्ण पीत था। इससे पुष्टि होती है कि पिछले कलियुगों में भी भगवान् ने अवतार लिया था, जिसमें उनका रंग पीत था। यह समझा जाता है कि भगवान् विभिन्न युगों (सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि) में विभिन्न रंगों में अवतरित होते हैं। पीत रंग तथा अन्य गुणों

को धारण करके भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए। यह सारे वैदिक महाभागवतों का निर्णय है।

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ।
नाना-तन्त्र-विधानेन कलावपि तथा शृणु ॥१०२॥

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ।
नाना-तन्त्र-विधानेन कलावपि तथा शृणु ॥ १०२ ॥

इति—इस प्रकार; **द्वापरे**—द्वापर युग में; **उरु-ईश**—हे राजन्; **स्तुवन्ति**—स्तुति करते हैं; **जगत्-ईश्वरम्**—जगद् ईश्वर की; **नाना**—नाना; **तन्त्र**—पूरक वैदिक साहित्य; **विधानेन**—विधि-विधानों से; **कलौ**—कलियुग में; **अपि**—निश्चित रूप से; **तथा**—तथा; **शृणु**—सुनो।

अनुवाद

"'कलियुग में तथा द्वापर युग में भी लोग विभिन्न मन्त्रों से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति करते हैं और पूरक वैदिक ग्रंथों के नियमों का पालन करते हैं। अब आप कृपया मुझसे इसके विषय में सुनें।

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (११.५.३१) से है।

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र-पार्षदम् ।
यज्ञैः सङ्कीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥१०३॥

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र-पार्षदम् ।
यज्ञैः सङ्कीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥ १०३ ॥

कृष्ण-वर्णम्—'कृष्' तथा 'ण' दो अक्षरों का जप; **त्विषा**—कान्ति से; **अकृष्णम्**—काला नहीं; **स-अङ्ग**—स्वांश विस्तार के साथ; **उप-अङ्ग**—भक्त; **अस्त्र**—हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन रूपी अस्त्र; **पार्षदम्**—और गदाधर, स्वरूप दामोदर जैसे पार्षद; **यज्ञैः**—यज्ञ से; **सङ्कीर्तन**—हरे कृष्ण मंत्र का सामूहिक कीर्तन; **प्रायैः**—मुख्यतया; **यजन्ति**—पूजा करते हैं; **हि**—निस्सन्देह; **सु-मेधसः**—जो बुद्धिमान हैं।

अनुवाद

"'इस कलियुग में बुद्धिमान लोग हरे कृष्ण महामन्त्र का सामूहिक कीर्तन करते हैं और उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा करते हैं, जो

इस युग में सदैव कृष्ण की महिमा का वर्णन करने के लिए प्रकट होते हैं। ये अवतार पीत वर्ण के होते हैं और सदैव अपने पूर्ण विस्तारों (यथा नित्यानन्द प्रभु) तथा स्वांशों (यथा गदाधर) के अतिरिक्त भक्तों तथा पार्षदों (यथा स्वरूप दामोदर) को साथ रखते हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (११.५.३२) का है, जिसकी व्याख्या श्रील जीव गोस्वामी अपनी कृति *क्रम-सन्दर्भ* में करते हैं, जिसको श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने आदिलीला, तृतीय अध्याय, श्लोक ५२ की व्याख्या करते हुए उद्धृत किया है।

सुवर्ण-वर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।
सन्न्यास-कृच्छमः शान्तो निष्ठा-शान्ति-परायणः ॥ १०४॥

सुवर्ण-वर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।
सन्न्यास-कृच्छमः शान्तो निष्ठा-शान्ति-परायणः ॥ १०४॥

सुवर्ण-वर्णः—सोने जैसे रंगवाले; **हेम-अङ्गः**—पिघले सोने की भाँति शरीर वाले; **वर-अङ्गः**—बहुत सुन्दर शरीर वाले; **चन्दन-अङ्गदी**—चन्दन से लिपे; **सन्न्यास-कृत्**—संन्यास स्वीकृत किये हुए; **शमः**—आत्म-संयमी; **शान्तः**—शान्त; **निष्ठा**—निष्ठावान; **शान्ति**—हरे कृष्ण महामंत्र के प्रचार द्वारा शान्ति लाने वाले; **परायणः**—सदा भक्ति के आवेश में स्थित।

अनुवाद

"(गौरसुन्दर अवतार में) भगवान् का रंग सुनहरा है। उनका अत्यन्त सुगठित शरीर पिघले सोने जैसा है। उनके सारे शरीर पर चन्दन का लेप है। वे चतुर्थ आश्रम (संन्यास) ग्रहण करेंगे और अत्यन्त आत्म-संयमी होंगे। वे मायावादी संन्यासियों से इस कारण भिन्न होंगे कि वे भक्ति में स्थिर होंगे और संकीर्तन आन्दोलन का विस्तार करेंगे।'"

तात्पर्य

गोपीनाथ आचार्य ने यह श्लोक *महाभारत* के विष्णु-सहस्र-नाम-स्तोत्र से उद्धृत किया।

तोमार आगे एत कथार नाहि प्रयोजन ।
ऊषर-भूमिते येन बीजेर रोपण ॥ १०५ ॥

तोमार आगे एत कथार नाहि प्रयोजन ।
ऊषर-भूमिते ग्रेन बीजेर रोपण ॥ १०५ ॥

तोमार आगे—आपके आगे; **एत**—इतने; **कथार**—शब्दों की; **नाहि**—नहीं है; **प्रयोजन**—आवश्यकता; **ऊषर-भूमिते**—बंजर भूमि पर; **ग्रेन**—जैसे; **बीजेर**—बीज का; **रोपण**—बोना।

अनुवाद

तब गोपीनाथ आचार्य ने कहा, "शास्त्रों से और अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आप शुष्क चिन्तक हैं। बंजर भूमि में बीज डालने से कोई लाभ नहीं होता।

तोमार उपरे ताँर कृपा यबे हबे ।
ए-सब सिद्धान्त तबे तुमिह कहिबे ॥ १०६ ॥

तोमार उपरे ताँर कृपा ग्रबे हबे ।
ए-सब सिद्धान्त तबे तुमिह कहिबे ॥ १०६ ॥

तोमार उपरे—आप पर; **ताँर**—भगवान् की; **कृपा**—कृपा; **ग्रबे**—जब; **हबे**—होगी; **ए-सब**—ये सब; **सिद्धान्त**—सिद्धान्त; **तबे**—उस समय; **तुमिह**—आप भी; **कहिबे**—कहोगे।

अनुवाद

"जब आप पर भगवान् प्रसन्न होंगे, तब आप भी इन सारे सिद्धान्तों को समझ सकेंगे और फिर शास्त्रों से उद्धरण देंगे।

तोमार ये शिष्य कहे कुतर्क, नाना-वाद ।
इहार कि दोष—एई मायार प्रसाद ॥ १०७ ॥

तोमार ग्रे शिष्य कहे कुतर्क, नाना-वाद ।
इहार कि दोष—एइ मायार प्रसाद ॥ १०७ ॥

तोमार—आपके; **ग्रे**—जो; **शिष्य**—शिष्य; **कहे**—करते हैं; **कु-तर्क**—कुतर्क; **नाना-वाद**—दर्शन का विवाद; **इहार**—उनका; **कि**—क्या; **दोष**—दोष; **एइ**—यह; **मायार**—माया का; **प्रसाद**—वरदान।

अनुवाद

"आपके शिष्यों के झूठे तर्क तथा दार्शनिक शब्दाडम्बर उनके दोष नहीं हैं। उन्हें केवल मायावाद दर्शन का प्रसाद प्राप्त हुआ है।

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै
विवाद-संवाद-भुवो भवन्ति ।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्म-मोहं
तस्मै नमोऽनन्त-गुणाय भूम्ने ॥ १०८॥

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै
विवाद-संवाद-भुवो भवन्ति ।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्म-मोहं
तस्मै नमोऽनन्त-गुणाय भूम्ने ॥ १०८॥

यत्—जिनकी; **शक्तयः**—शक्तियाँ; **वदताम्**—तर्क; **वादिनाम्**—वाद-विवाद करने वालों का; **वै**—निस्सन्देह; **विवाद**—विरोध की; **संवाद**—सहमति; **भुवः**—विषय; **भवन्ति**—होते हैं; **कुर्वन्ति**—करते हैं; **च**—और; **एषाम्**—उनका; **मुहुः**—सदा; **आत्म-मोहम्**—आत्म मोह; **तस्मै**—उनको; **नमः**—नमस्कार; **अनन्त**—अनन्त; **गुणाय**—गुणों वाले; **भूम्ने**—परम भगवान् को।

अनुवाद

"'मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ, जो असीम गुणों से सम्पन्न हैं और जिनकी विभिन्न शक्तियाँ वाद-विवाद करने वालों के बीच सहमति तथा विरोध लाने वाली हैं। इस तरह वाद-विवाद करने वाले दोनों पक्षों के आत्म-साक्षात्कार को माया पुनः पुनः आवृत करती रहती है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (६.४.३१) का है।

युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा ।
मायां मदीयामुदगृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥ १०९॥

युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा ।
मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥ १०९ ॥

युक्तम्—उचित; **च**—भी; **सन्ति**—हैं; **सर्वत्र**—सर्वत्र; **भाषन्ते**—बोलते हैं; **ब्राह्मणाः**—विद्वान; **यथा**—जितना; **मायाम्**—माया; **मदीयाम्**—मेरा; **उद्गृह्य**—स्वीकार करके; **वदताम्**—अनुमान करनेवालों का; **किम्**—क्या; **नु**—निश्चय ही; **दुर्घटम्**—असम्भव।

अनुवाद

"'प्रायः सभी क्षेत्रों में विद्वान ब्राह्मण के वचन मान्य होते हैं। जो मेरी बहिरंगा माया की शरण में आता है और उसके वशीभूत होकर बोलता है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।'"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक (११.२२.४) में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् बतलाते हैं कि उनकी माया असम्भव को भी सम्भव बना सकती है—ऐसी है माया की शक्ति। दार्शनिक चिन्तकों ने अनेक बार वास्तविक सत्य को आवृत करते हुए मिथ्या सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। प्राचीनकाल में कपिल, गौतम, जैमिनि, कणाद तथा अन्य ब्राह्मणों ने व्यर्थ के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और आजकल तथाकथित वैज्ञानिक सृष्टि-विषयक अनेक मिथ्या सिद्धान्त प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनका समर्थन वे तथाकथित तर्कों द्वारा करते हैं। यह सब परम भगवान् की माया के प्रभाव के कारण है। अतः कभी-कभी माया सही प्रतीत होती है, क्योंकि यह परम सत्य से उद्भूत है। माया के मोहित करने वाले प्रभाव से बचने के लिए मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वचनों को यथारूप में स्वीकार करना चाहिए। केवल तभी मनुष्य माया के प्रभाव से बच सकता है।

তবে ভট্টাচার্য কহে, যাহ গোসাঞির স্থানে ।
আমার নামে গণ-সহিত কর নিমন্ত্রণে ॥ ১১০ ॥

তবে ভট্টাচার্য্য কহে, যাহ গোসাঞির স্থানে ।
আমার নামে গণ-সহিত কর নিমন্ত্রণে ॥ ११० ॥

তবে—तत्पश्चात्; **भट्टाचार्य्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **कहे**—कहते हैं; **याह**—कृपया जाओ;

गोसाञिर स्थने—चैतन्य महाप्रभु के स्थान को; **आमार नामे**—मेरी ओर से; **गण-सहित**—उनको साथियों सहित; **कर**—दो; **निमन्त्रणे**—निमन्त्रण।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य से यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "पहले आप उस स्थान को जाएँ, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु ठहरे हैं और उन्हें उनके साथियों समेत मेरी ओर से आमंत्रित करके यहाँ बुलाएँ।

প্রসাদ আনি' তাঁরে করাহ আগে ভিক্ষা ।
পশ্চাতাসি' আমারে করাইহ শিক্ষা ॥১১১॥

प्रसाद आनि' ताँरे कराह आगे भिक्षा ।
पश्चात् आसि' आमारे कराइह शिक्षा ॥ १११ ॥

प्रसाद आनि'—जगन्नाथ का प्रसाद लाकर; **ताँरे**—उनको; **कराह**—कराओ; **आगे**—पहले; **भिक्षा**—प्रसाद; **पश्चात्**—बाद में; **आसि'**—यहाँ आकर; **आमारे**—मुझे; **कराइह**—दो; **शिक्षा**—शिक्षा।

अनुवाद

"जगन्नाथजी का प्रसाद लीजिये और सर्वप्रथम इसे चैतन्य महाप्रभु तथा उनके साथियों को दीजिये। उसके बाद यहाँ लौटकर आइए और तब मुझे भलीभाँति शिक्षा दीजिये।"

আচার্য—ভগিনী-পতি, শ্যালক—ভট্টাচার্য ।
নিন্দা-স্তুতি-হাস্যে শিক্ষা করা'ন আচার্য ॥১১২॥

आचार्य्र—भगिनी-पति, श्यालक—भट्टाचार्य्र ।
निन्दा-स्तुति-हास्ये शिक्षा करा'न आचार्य्र ॥ ११२ ॥

आचार्य्र—गोपीनाथ आचार्य; **भगिनी-पति**—बहन का पति; **श्यालक**—पत्नी का भाई; **भट्टाचार्य्र**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **निन्दा**—कभी निन्दा करके; **स्तुति**—कभी प्रशंसा करके; **हास्ये**—कभी हँसकर; **शिक्षा**—शिक्षा; **करा'न**—करवाते हैं; **आचार्य्र**—गोपीनाथ आचार्य।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य सार्वभौम भट्टाचार्य के बहनोई थे; अतएव उनका सम्बन्ध अत्यन्त मधुर तथा घनिष्ठ था। ऐसी स्थिति में, गोपीनाथ आचार्य

ने उन्हें कभी उनकी निन्दा करके, कुछ उनकी प्रशंसा करके और कुछ परिहास करके सिखलाया। कुछ समय से ऐसा ही चल रहा था।

আচার্যের সিদ্ধান্তে মুকুন্দের হৈল সন্তোষ ।
ভট্টাচার্যের বাক্য মনে হৈল দুঃখ-রোষ ॥১১৩॥

आचार्य्येर सिद्धान्ते मुकुन्देर हैल सन्तोष ।
भट्टाचार्य्येर वाक्य मने हैल दु:ख-रोष ॥ ११३ ॥

आचार्य्येर—गोपीनाथ आचार्य के; **सिद्धान्ते**—सिद्धान्तों से; **मुकुन्देर**—मुकुन्द दत्त का; **हैल**—था; **सन्तोष**—संतोष; **भट्टाचार्य्येर**—सार्वभौम भट्टाचार्य के; **वाक्ये**—शब्दों से; **मने**—मन में; **हैल**—था; **दु:ख**—दु:ख; **रोष**—और क्रोध।

अनुवाद

श्री मुकुन्द दत्त गोपीनाथ आचार्य के निष्कर्षात्मक वचनों को सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए; किन्तु सार्वभौम भट्टाचार्य के कथनों को सुनकर वे अत्यन्त दु:खी तथा रुष्ट हुए।

গোসাঞির স্থানে আচার্য কৈল আগমন ।
ভট্টাচার্যের নামে তাঁরে কৈল নিমন্ত্রণ ॥১১৪॥

गोसाञिर स्थाने आचार्य्य कैल आगमन ।
भट्टाचार्य्येर नामे ताँरे कैल निमन्त्रण ॥ ११४॥

गोसाञिर स्थाने—श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान को; **आचार्य्य**—गोपीनाथ आचार्य; **कैल**—किया; **आगमन**—आगमन; **भट्टाचार्य्येर नामे**—सार्वभौम भट्टाचार्य की ओर से; **ताँरे**—उनको; **कैल**—किया; **निमन्त्रण**—निमंत्रण।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के आदेशानुसार गोपीनाथ आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गये और उन्हें भट्टाचार्य की ओर से आमन्त्रित किया।

মুকুন্দ-সহিত কহে ভট্টাচার্যের কথা ।
ভট্টাচার্যের নিন্দা করে, মনে পাঞা ব্যথা ॥১১৫॥

मुकुन्द-सहित कहे भट्टाचार्य्येर कथा ।
भट्टाचार्य्येर निन्दा करे, मने पाञा व्यथा ॥ ११५ ॥

मुकुन्द-सहित—मुकुन्द के साथ; **कहे**—कहते हैं; **भट्टाचार्य्येर कथा**—सार्वभौम भट्टाचार्य के सभी वचन; **भट्टाचार्य्येर**—सार्वभौम भट्टाचार्य की; **निन्दा**—निन्दा; **करे**—करते हैं; **मने**—मन में; **पाञा**—पाकर; **व्यथा**—कुछ दुःख।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने भट्टाचार्य के कथनों की चर्चा की गई। गोपीनाथ आचार्य तथा मुकुन्द दत्त दोनों ने ही भट्टाचार्य के कथनों को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि उनसे उनको मानसिक दुःख पहुँचता था।

শুনি মহাপ্রভু কহে ঐছে মঙ্কহ ।
আমা প্রতি ভট্টাচার্যের হয় অনুগ্রহ ॥ ১১৬ ॥

शुनि महाप्रभु कहे ऐछे मत् कह।
आमा प्रति भट्टाचार्य्येर हय अनुग्रह ॥ ११६ ॥

शुनि—उनको सुनकर; **महाप्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **कहे**—कहते हैं; **ऐछे**—ऐसा; **मत् कह**—मत कहो; **आमा प्रति**—मेरे प्रति; **भट्टाचार्य्येर**—सार्वभौम भट्टाचार्य की; **हय**—है; **अनुग्रह**—दया।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आप इस तरह न बोलें। सार्वभौम भट्टाचार्य मेरे प्रति अत्यन्त वत्सल एवं कृपालु हैं।

আমার সন্ন্যাস-ধর্ম চাহেন রাখিতে ।
বাৎসল্যে করুণা করেন, কি দোষ ইহাতে ॥ ১১৭ ॥

आमार सन्न्यास-धर्म चाहेन राखिते ।
वात्सल्ये करुणा करेन, कि दोष इहाते ॥ ११७ ॥

आमार—मेरा; **सन्न्यास-धर्म**—संन्यास धर्म; **चाहेन**—वे चाहते हैं; **राखिते**—रखना; **वात्सल्ये**—वात्सल्य प्रेम के कारण; **करुणा**—दया; **करेन**—करते हैं; **कि**—क्या; **दोष**—दोष; **इहाते**—इस सम्बन्ध में।

अनुवाद

"वे मेरे प्रति वात्सल्य के कारण मेरी रक्षा करना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि मैं संन्यासी के नियमों का पालन करूँ। इसमें कौन-सा दोष है?"

आर दिन महाप्रभु भट्टाचार्य-सने ।
आनन्दे करिला जगन्नाथ दरशने ॥११८॥
आर दिन महाप्रभु भट्टाचार्य-सने ।
आनन्दे करिला जगन्नाथ दरशने ॥११८॥

आर दिन—अगले दिन; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **भट्टाचार्य-सने**—सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ; **आनन्दे**—आनन्द में; **करिला**—किये; **जगन्नाथ**—भगवान् जगन्नाथ के; **दरशने**—दर्शन।

अनुवाद

अगले दिन प्रातःकाल श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ जगन्नाथजी के मन्दिर दर्शन करने गये। दोनों ही अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में थे।

भट्टाचार्य-सङ्गे ताँर मन्दिरे आइला ।
प्रभुरे आसन दिया आपने वसिला ॥११९॥
भट्टाचार्य-सङ्गे ताँर मन्दिरे आइला ।
प्रभुरे आसन दिया आपने वसिला ॥११९॥

भट्टाचार्य-सङ्गे—सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ; **ताँर**—उनके (भगवान् जगन्नाथ के); **मन्दिरे**—मन्दिर में; **आइला**—आये; **प्रभुरे**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **आसन**—आसन; **दिया**—देकर; **आपने**—स्वयं; **वसिला**—बैठे।

अनुवाद

जब वे मन्दिर में पहुँचे, तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु को आसन दिया और संन्यासी के आदरार्थ स्वयं भूमि पर बैठ गये।

বেদান্ত পড়াইতে তবে আরম্ভ করিলা ।
স্নেহ-ভক্তি করি' কিছু প্রভুরে কহিলা ॥ ১২০ ॥

वेदान्त पड़ाइते तबे आरम्भ करिला ।
स्नेह-भक्ति करि' किछु प्रभुरे कहिला ॥ १२० ॥

वेदान्त—वेदान्त दर्शन; **पड़ाइते**—पढ़ाने के लिए; **तबे**—तब; **आरम्भ**—आरम्भ; **करिला**—किया; **स्नेह**—स्नेह, प्यार; **भक्ति**—और भक्ति; **करि'**—दिखाकर; **किछु**—कुछ; **प्रभुरे**—महाप्रभु को; **कहिला**—कहा।

अनुवाद

तब उन्होंने चैतन्य महाप्रभु को वेदान्त-दर्शन पढ़ाना शुरू किया और स्नेह तथा भक्ति के कारण महाप्रभु से वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य

श्रील व्यासदेव द्वारा विरचित *वेदान्त* या *ब्रह्मसूत्र* ऐसा ग्रंथ है, जिसका अध्ययन सभी सम्प्रदायों के उन्नत आध्यात्मिक विद्यार्थी, विशेषतया संन्यासी करते हैं। वैदिक ज्ञान विषयक अन्तिम निष्कर्षों की स्थापना करने के लिए संन्यासियों को *वेदान्त-सूत्र* का अध्ययन करना आवश्यक है। हाँ, यहाँ जिस वेदान्त का उल्लेख हुआ है, वह शंकराचार्य की टीका है, जिसे *शारीरक भाष्य* कहते हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को वैष्णव संन्यासी से मायावादी संन्यासी में बदलना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने शंकराचार्य कृत शारीरक भाष्य के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु को वेदान्त-सूत्र की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया था। शंकर-सम्प्रदाय के सारे संन्यासी इसी शारीरक भाष्य सहित *वेदान्त-सूत्र* को गम्भीरता से पढ़ने का आनन्द लेते हैं। कहा गया है—*वेदान्त वाक्येषु सदा रमन्तः*—"मनुष्य को चाहिए कि *वेदान्त-सूत्र* के अध्ययन में आनन्द ले।"

বেদান্ত-শ্রবণ,—এই সন্ন্যাসীর ধর্ম ।
নিরন্তর কর তুমি বেদান্ত শ্রবণ ॥ ১২১ ॥

वेदान्त-श्रवण,—एइ सन्न्यासीर धर्म ।
निरन्तर कर तुमि वेदान्त श्रवण ॥ १२१ ॥

वेदान्त-श्रवण—वेदान्त-दर्शन का श्रवण; **एइ**—यह; **सन्न्यासीर**—संन्यासी का; **धर्म**—धर्म; **निरन्तर**—निरन्तर; **कर**—करो; **तुमि**—आप; **वेदान्त**—वेदान्त दर्शन का; **श्रवण**—श्रवण।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "वेदान्त दर्शन सुनना ही संन्यासी का मुख्य कर्तव्य है। अतएव आपको चाहिए कि बिना हिचक के वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करें और किसी श्रेष्ठ व्यक्ति से इसका निरन्तर श्रवण करें।"

প্রভু কহে,—'মোরে তুমি কর অনুগ্রহ ।
সেই সে কর্তব্য, তুমি যেই মোরে কহ' ॥১২২॥

प्रभु कहे,—'मोरे तुमि कर अनुग्रह ।
सेइ से कर्तव्य, तुमि येइ मोरे कह' ॥१२२॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **मोरे**—मुझ पर; **तुमि**—आप; **कर**—दिखाओ; **अनुग्रह**—दया; **सेइ से**—वह ; **कर्तव्य**—कर्तव्य; **तुमि**—आप; **येइ**—जो कुछ; **मोरे**—मुझे; **कह**—कहो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "आप मुझ पर अत्यन्त कृपालु हैं। अतएव आपके आदेश का पालन करना मेरा कर्तव्य है।"

সাত দিন পর্যন্ত ঐছে করেন শ্রবণে ।
ভাল-মন্দ নাহি কহে, বসি' মাত্র শুনে ॥১২৩॥

सात दिन पर्य्यन्त ऐछे करेन श्रवणे ।
भाल-मन्द नाहि कहे, वसि' मात्र शुने ॥१२३॥

सात दिन—सात दिन; **पर्य्यन्त**—तक; **ऐछे**—इस प्रकार; **करेन**—करते हैं; **श्रवणे**—श्रवण; **भाल**—ठीक; **मन्द**—गलत; **नाहि**—नहीं; **कहे**—कहते हैं; **वसि'**—बैठकर; **मात्र**—मात्र; **शुने**—सुनते हैं।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा प्रतिपादित वेदान्त-दर्शन का सात दिनों तक लगातार श्रवण किया। किन्तु चैतन्य महाप्रभु न तो

कुछ बोले, न ही इसका संकेत दिया कि यह सही है या गलत। वे केवल बैठे बैठे भट्टाचार्य की बातें सुनते रहे।

অষ্টম-দিবসে তাঁরে পুছে সার্বভৌম ।
সাত দিন কর তুমি বেদান্ত শ্রবণ ॥ ১২৪ ॥

অষ্টম-দিবসে তাঁরে পুছে সার্বভৌম ।
সাত দিন কর তুমি বেদান্ত শ্রবণ ॥ ১২৪ ॥

अष्टम-दिवसे—आठवें दिन; **ताँरे**—उनको; **पुछे**—पूछते हैं; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **सात दिन**—सात दिन; **कर**—किया; **तुमि**—आपने; **वेदान्त**—वेदान्त दर्शन; **श्रवण**—श्रवण।

अनुवाद

आठवें दिन सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से कहा, "आप लगातार सात दिनों से मुझसे वेदान्त दर्शन सुन रहे हैं।

ভাল-মন্দ নাহি কহ, রহ মৌন ধরি' ।
বুঝ, কি না বুঝ,—ইহা বুঝিতে না পারি ॥ ১২৫ ॥

ভাল-মন্দ নাহি কহ, রহ মৌন ধরি' ।
বুঝ, কি না বুঝ,—ইহা বুঝিতে না পারি ॥ ১২৫ ॥

भाल-मन्द—अच्छा बुरा; **नाहि कह**—नहीं कहते; **रह**—रहो; **मौन**—मौन; **धरि'**—होकर; **बुझ**—समझते हो; **कि**—अथवा; **ना**—नहीं; **बुझ**—समझते; **इहा**—यह; **बुझिते**—समझने के लिए; **ना**—नहीं; **पारि**—सकता हूँ।

अनुवाद

"आप मौन धारण किये हुए सुनते रहे हैं। चूँकि आप यह नहीं कह रहे हैं कि यह सही है या गलत, अतएव मैं यह नहीं समझ पा रहा कि आप वेदान्त-दर्शन को वास्तव में समझ पा रहे हैं या नहीं।"

প্রভু কহে—"মূর্খ আমি, নাহি অধ্যয়ন ।
তোমার আজ্ঞাতে মাত্র করিয়ে শ্রবণ ॥ ১২৬ ॥

प्रभु कहे—"मूर्ख आमि, नाहि अध्ययन ।
तोमार आज्ञाते मात्र करिये श्रवण ॥ १२६ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **मूर्ख आमि**—मैं मूर्ख हूँ; **नाहि**—नहीं है; **अध्ययन**—अध्ययन; **तोमार**—आपकी; **आज्ञाते**—आज्ञा से; **मात्र**—केवल; **करिये**—मैं करता हूँ; **श्रवण**—श्रवण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर में कहा, "मैं मूर्ख हूँ, फलतः मैं *वेदान्त-सूत्र* का अध्ययन नहीं करता। आपने आदेश दिया है, अतएव मैं आपसे इसे सुनने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

सन्न्यासीर धर्म लागि' श्रवण मात्र करि ।
तुमि येइ अर्थ कर, बुझिते ना पारि" ॥ १२७ ॥
सन्न्यासीर धर्म लागि' श्रवण मात्र करि ।
तुमि येइ अर्थ कर, बुझिते ना पारि" ॥ १२७ ॥

सन्न्यासीर—संन्यासी का; **धर्म**—धर्म; **लागि'**—के लिए; **श्रवण**—श्रवण; **मात्र**—केवल; **करि**—मैं करता हूँ; **तुमि**—आप; **येइ**—जो कुछ; **अर्थ**—अर्थ; **कर**—करते हो; **बुझिते**—समझने; **ना**—नहीं; **पारि**—सक्षम हूँ।

अनुवाद

"मैं तो संन्यासी धर्म के पालन के लिए ही सुनता हूँ। दुर्भाग्यवश आप जो अर्थ कह रहे हैं, उसका मैं लेशमात्र भी अर्थ नहीं समझ पा रहा हूँ।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने आपको इस तरह प्रस्तुत कर रहे थे मानो वे केवल नाम के संन्यासी हों अर्थात् पहले दर्जे के मूर्ख हों। भारत में मायावादी संन्यासी अपने आपको जगद्गुरु घोषित करने के काफी अभ्यस्त हैं, यद्यपि उन्हें बाह्य जगत् की कोई जानकारी नहीं होती और उनका अनुभव किसी छोटे नगर या गाँव या भारत देश तक सीमित होता है। न ही ऐसे संन्यासियों को पर्याप्त शिक्षा मिली होती है। दुर्भाग्यवश, इस समय भारत में तथा अन्यत्र भी ऐसे अनेक मूर्ख संन्यासी हैं, जो वैदिक साहित्य का भावार्थ जाने बिना मात्र

उसका अध्ययन करते रहते हैं। जब श्री चैतन्य महाप्रभु नवद्वीप के मुस्लिम शासक चान्दकाजी से शास्त्रार्थ कर रहे थे, तो उन्होंने वैदिक साहित्य से एक श्लोक सुनाया जिसका अर्थ था कि इस कलियुग में संन्यास-आश्रम वर्जित है। केवल वे ही संन्यास ग्रहण कर सकते हैं, जो गम्भीर हैं और वैदिक नियमों का पालन एवं वैदिक साहित्य का अध्ययन करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यासी द्वारा *वेदान्त-सूत्र* या *ब्रह्मसूत्र* के अध्ययन का अनुमोदन तो किया, किन्तु उन्होंने शंकराचार्य के शारीरक भाष्य का अनुमोदन नहीं किया। अन्यत्र, उन्होंने यहाँ तक कहा है—*मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश*—"यदि कोई व्यक्ति शंकराचार्य के शारीरक भाष्य को सुनता है, तो उसका सर्वनाश हो जाता है।" अतएव एक अध्यात्मवादी को, संन्यासी को नियमपूर्वक *वेदान्त-सूत्र* का तो अध्ययन करना चाहिए, किन्तु उसे शारीरक भाष्य नहीं पढ़ना चाहिए। यह श्री चैतन्य महाप्रभु का निष्कर्ष है। *वेदान्त-सूत्र* का वास्तविक भाष्य तो *श्रीमद्भागवतम्* है। *अर्थोऽयं ब्रह्म सूत्राणाम्—श्रीमद्भागवतम्* ही स्वयं श्रील व्यासदेव द्वारा विरचित *वेदान्त-सूत्र* का मूल भाष्य है।

भट्टाचार्य कहे,—ना बुझि', हेन ज्ञान यार ।
बुझिबार लागि' सेह पूछे पुनर्बार ॥ १२८॥
भट्टाचार्य्य कहे,—ना बुझि', हेन ज्ञान य्यार ।
बुझिबार लागि' सेह पुछे पुनर्बार ॥ १२८॥

भट्टाचार्य्य कहे—सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; **ना बुझि'**—नहीं समझते हो; **हेन**—यह; **ज्ञान**—ज्ञान; **य्यार**—किसी का; **बुझिबार लागि'**—समझने के लिए; **सेह**—वह भी; **पुछे**—पूछता है; **पुनः-बार**—दोबारा।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "मैं मानता हूँ कि आप नहीं समझ रहे, किन्तु जिसकी समझ में नहीं आता, वह भी तो विषय-वस्तु के विषय में जिज्ञासा करता है।

तुमि शुनि' शुनि' रह मौन मात्र धरि' ।
हृदये कि आछे तोमार, बुझिते ना पारि ॥ १२९॥

तुमि शुनि' शुनि' रह मौन मात्र धरि' ।
हृदये कि आछे तोमार, बुझिते ना पारि ॥ १२९ ॥

तुमि—आप; **शुनि'**—सुनकर; **शुनि'**—सुनकर; **रह**—रहते हो; **मौन**—मौन; **मात्र**—मात्र; **धरि'**—रखकर; **हृदये**—दिल में; **कि**—क्या; **आछे**—है; **तोमार**—आपके; **बुझिते**—समझने के; **ना**—नहीं; **पारि**—योग्य हूँ।

अनुवाद

"आप लगातार सुनते जा रहे हैं, किन्तु मौन धारण किये हुए हैं। मेरी समझ में नहीं आ रहा कि वास्तव में आपके मन में है क्या?"

প্রভু কহে,—"সূত্রের অর্থ বুঝিয়ে নির্মল ।
তোমার ব্যাখ্যা শুনি' মন হয় ত' বিকল ॥১৩০॥

प्रभु कहे,—"सूत्रेर अर्थ बुझिये निर्मल ।
तोमार व्याख्या शुनि' मन हय त' विकल ॥ १३० ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **सूत्रेर अर्थ**—सूत्रों के अर्थ; **बुझिये**—मैं समझ सकता हूँ; **निर्मल**—स्पष्टतया; **तोमार**—आपकी; **व्याख्या**—व्याख्या; **शुनि'**—सुनकर; **मन**—मन; **हय**—हो जाता है; **त'**—निस्सन्देह; **विकल**—विचलित।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने यह कहते हुए अपने मन की बात प्रकट की, "मैं प्रत्येक सूत्र का अर्थ बहुत अच्छी तरह समझ सकता हूँ, किन्तु आपकी व्याख्या ने मेरे मन को विचलित कर दिया है।

तात्पर्य

वेदान्त-सूत्र के श्लोकों का वास्तविक अर्थ तो सूर्य-प्रकाश के समान स्पष्ट है। किन्तु मायावादी दार्शनिक सूर्य-प्रकाश को शंकराचार्य तथा उनके अनुयायियों द्वारा कल्पित व्याख्याओं के बादलों से आच्छादित करने का प्रयास करते हैं।

সূত্রের অর্থ ভাষ্য কহে প্রকাশিয়া ।
তুমি, ভাষ্য কহ—সূত্রের অর্থ আচ্ছাদিয়া ॥১৩১॥

सूत्रेर अर्थ भाष्य कहे प्रकाशिया ।
तुमि, भाष्य कह—सूत्रेर अर्थ आच्छादिया ॥ १३१ ॥

सूत्रेर अर्थ—सूत्रों के अर्थ; **भाष्य**—भाष्य; **कहे**—कहते हैं; **प्रकाशिया**—स्पष्ट करके; **तुमि**—आप; **भाष्य कह**—आलोचना करते हो; **सूत्रेर**—सूत्रों की; **अर्थ**—अर्थ; **आच्छादिया**—अस्पष्ट करके।

अनुवाद

"*वेदान्त-सूत्र* के श्लोकों का स्पष्ट तात्पर्य उन्हीं में निहित है, किन्तु आपने जितने अन्य तात्पर्य प्रस्तुत किये हैं, उन्होंने सूत्र के अर्थ को बादल की तरह ढक लिया है।

तात्पर्य

इस श्लोक की व्याख्या के लिए कृपया आदिलीला (अध्याय ७, श्लोक १०६-१४६) देखें।

সূত্রের মুখ্য অর্থ না করহ ব্যাখ্যান ।
কল্পনার্থে তুমি তাহা কর আচ্ছাদন ॥ ১৩২ ॥

सूत्रेर मुख्य अर्थ ना करह व्याख्यान ।
कल्पनार्थे तुमि ताहा कर आच्छादन ॥ १३२ ॥

सूत्रेर—सूत्रों के; **मुख्य**—मुख्य; **अर्थ**—अर्थ; **ना**—नहीं; **करह**—आप करते हो; **व्याख्यान**—व्याख्या; **कल्पना-अर्थे**—काल्पनिक अर्थों के कारण; **तुमि**—आप; **ताहा**—उनको; **कर**—करते हो; **आच्छादन**—अस्पष्ट।

अनुवाद

"आप *ब्रह्मसूत्र* का मुख्य अर्थ नहीं बतला रहे। ऐसा लगता है कि आपका कार्य वास्तविक अर्थ को छिपाना है।"

तात्पर्य

यह सारे मायावादियों या नास्तिकों की विशेषता है, जो वैदिक साहित्य का अर्थ अपनी कल्पना से करते हैं। ऐसे मूर्ख लोगों का वास्तविक प्रयोजन सारे वैदिक साहित्य पर निर्विशेषवादी निष्कर्ष आरोपित करना रहता है। ये मायावादी नास्तिक *भगवद्गीता* की भी व्याख्या करते हैं। *भगवद्गीता* के प्रत्येक श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। प्रत्येक श्लोक

में व्यासदेव कहते हैं—*श्री भगवान् उवाच*—अर्थात् "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने कहा," अथवा "श्री भगवान् ने कहा।" यह स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् परम पुरुष हैं, किन्तु मायावादी नास्तिक तब भी यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि परम सत्य निराकार है। वे अपने झूठे काल्पनिक अर्थ प्रस्तुत करने के लिए इतने वाक्जाल तथा व्याकरण पर आधारित व्याख्या का सहारा लेते हैं कि अन्ततोगत्वा वे हास्यास्पद लगने लगते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा कि किसी को भी वैदिक साहित्य की मायावादी व्याख्या नहीं सुननी चाहिए।

উপনিষদ্‌শব্দে যেই মুখ্য অর্থ হয় ।
সেই অর্থ মুখ্য,—ব্যাস-সূত্রে সব কয় ॥ ১৩৩ ॥

উপনিষদ্‌শব্দে য়েই মুখ্য অর্থ হয় ।
সেই অর্থ মুখ্য,—ব্যাস-সূত্রে সব কয় ॥ ১৩৩ ॥

উপনিষদ্—वेदों के; **শব্দে**—शब्दों से; **য়েই**—जो कुछ; **মুখ্য**—मुख्य; **অর্থ**—अर्थ; **হয়**—है; **সেই**—वह; **অর্থ**—अर्थ; **মুখ্য**—मुख्य; **ব্যাস-সূত্রে**—*वेदान्त-सूत्र* में; **সব**—सब; **কয়**—वर्णन है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, *"वेदान्त-सूत्र* समस्त उपनिषदों का सार है; इसलिए उपनिषदों में जो भी मुख्य अर्थ है, वह सब *वेदान्त-सूत्र* या *व्यास-सूत्र* में भी अंकित है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने अपने *अनुभाष्य* में *उपनिषद्* शब्द की व्याख्या की है। इसके लिए देखें आदिलीला, अध्याय २, श्लोक ५ तथा आदिलीला, अध्याय ७, श्लोक १०६ तथा १०८।

মুখ্যার্থ ছাড়িয়া কর গৌণার্থ কল্পনা ।
'অভিধা'-বৃত্তি ছাড়ি' কর শব্দের লক্ষণা ॥ ১৩৪ ॥

মুখ্যার্থ ছাড়িয়া কর গৌণার্থ কল্পনা ।
'অভিধা'-বৃত্তি ছাড়ি' কর শব্দের লক্ষণা ॥ ১৩৪ ॥

मुख्य-अर्थ—मुख्य अर्थ; **छाड़िया**—छोड़कर; **कर**—आप करते हो; **गौण-अर्थ**—अस्पष्ट (गौण) अर्थ; **कल्पना**—कल्पना करके; **अभिधा-वृत्ति**—वह अर्थ जो तत्काल समझा जाये; **छाड़ि'**—छोड़कर; **कर**—आप करते हो; **शब्देर**—शब्दों के; **लक्षणा**—मनोकल्पित अर्थ।

अनुवाद

"प्रत्येक सूत्र के मुख्य (प्रधान) अर्थ को बिना किसी अनुमान के स्वीकार कर लेना चाहिए। किन्तु आप तो मुख्य अर्थ को त्यागकर अपने मनोकल्पित अर्थ को लेकर आगे बढ़ते हैं।

प्रमाणेर मध्ये श्रुति प्रमाण—प्रधान ।
श्रुति ये मुख्यार्थ कहे, सेइ से प्रमाण ॥१३५॥

प्रमाणेर मध्ये श्रुति प्रमाण—प्रधान ।
श्रुति ये मुख्यार्थ कहे, सेइ से प्रमाण ॥१३५॥

प्रमाणेर—प्रमाणों के; **मध्ये**—मध्य में; **श्रुति**—श्रुति, वैदिक पक्ष; **प्रमाण**—प्रमाण; **प्रधान**—मुख्य; **श्रुति**—श्रुति, वैदिक पक्ष; **ये**—जो कुछ; **मुख्य-अर्थ**—मुख्य अर्थ; **कहे**—कहता है; **सेइ से**—वही; **प्रमाण**—प्रमाण।

अनुवाद

"यद्यपि अन्य प्रमाण भी हैं, किन्तु वैदिक प्रमाण को सर्वोपरि मानना चाहिए। वेदों में वर्णित सिद्धान्तों का मुख्य अर्थ सर्वोत्तम प्रमाण है।"

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में जिन ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए वे हैं—श्रील जीव गोस्वामी कृत *तत्त्व-सन्दर्भ* (१०-११), उस पर श्रील बलदेव विद्याभूषण का भाष्य तथा *ब्रह्मसूत्र* के—*शास्त्र योनित्वात्* (१.१.३) *तर्काप्रतिष्ठानात्* (२.१.११) तथा *श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्* (२.१.२७) श्लोकों की श्री रामानुजाचार्य, श्री मध्वाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य तथा श्रील बलदेव विद्याभूषण द्वारा की गई टीकाएँ। श्रील जीव गोस्वामी ने अपनी *सर्व-संवादिनी* नामक पुस्तक में दस प्रकार के प्रमाणों का वर्णन किया है—प्रत्यक्ष अनुभव, वैदिक प्रमाण, ऐतिहासिक सन्दर्भ, संकल्पना आदि। यद्यपि इन सबको सामान्यतया प्रमाण

माना जाता है, किन्तु संकल्पना प्रस्तुत करने वाले, वैदिक प्रमाण पढ़ने वाले व्यक्ति तथा अनुभव द्वारा निष्कर्ष पर पहुँचने वाले व्यक्ति में निश्चित रूप से चार दोष पाये जाते है। यथा—वह गलती करता है, भ्रमित होता है, धोखा देता है और उसकी इन्द्रियाँ अपूर्ण होती हैं। यद्यपि प्रमाण सही हो सकता है, किन्तु व्यक्ति अपने भौतिक दोषों के कारण भ्रमित हो सकता है। प्रत्यक्ष प्रस्तुति को छोड़कर बाकी में यह सम्भावना बनी रहती है कि अनुमान सही न हो। इसीलिए निष्कर्ष यह है कि प्रत्यक्ष प्रस्तुति को ही प्रमाण माना जा सकता है। अनुमान को प्रमाण नहीं माना जा सकता, वह तो मात्र प्रमाण को निश्चित करने का साधन है।

भगवद्गीता के प्रारम्भ में ही कहा गया है :

धृतराष्ट्र उवाच
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥

भगवद्गीता के कथन अपने आप में प्रमाण हैं कि कुरुक्षेत्र नामक तीर्थस्थान में युद्ध के लिए कौरव तथा पाण्डव एकत्र हुए। एकत्र होने के बाद उन्होंने क्या किया? यही धृतराष्ट्र का संजय से प्रश्न था। यद्यपि ये कथन अत्यन्त स्पष्ट हैं, किन्तु नास्तिक लोग *धर्मक्षेत्र* तथा *कुरुक्षेत्र* शब्दों का भिन्न अर्थ निकालने की चेष्टा करते हैं। इसीलिए श्रील जीव गोस्वामी ने किसी प्रकार की व्याख्या पर आश्रित न रहने की चेतावनी दी है। श्लोकों की व्याख्या किये बिना ही उन्हें यथा रूप स्वीकार करना अधिक श्रेयस्कर है।

जीवेर अस्थि-विष्ठा दुइ—शङ्ख-गोमय ।
श्रुतिस्मवाक्ये सेइ दुइ महा-पवित्र हय ॥१३६॥

जीवेर अस्थि-विष्ठा दुइ—शङ्ख-गोमय ।
श्रुति-वाक्ये सेइ दुइ महा-पवित्र हय ॥ १३६ ॥

जीवेर—जीव की; **अस्थि**—अस्थि; **विष्ठा**—मल; **दुइ**—दोनों; **शङ्ख**—शंख; **गो-मय**—गाय का गोबर; **श्रुति-वाक्ये**—वैदिक शब्दों में; **सेइ**—वह; **दुइ**—दोनों; **महा**—अत्यन्त; **पवित्र**—पवित्र; **हय**—हैं।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "शंख तथा गोबर किन्हीं जीवों की अस्थियाँ और विष्ठा मात्र हैं, किन्तु श्रुतिवाक्य है कि ये दोनों अत्यन्त पवित्र हैं।

तात्पर्य

वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार अस्थियाँ तथा विष्ठा सामान्यतया अत्यन्त अशुद्ध माने जाते हैं। यदि कोई इन्हें छू भी ले, तो उसे तुरन्त स्नान करना चाहिए। यही वैदिक आदेश है। फिर भी वेदों का यह भी कथन है कि पशु की अस्थि होने पर भी शंख तथा पशु की विष्ठा होने पर भी गोबर अत्यन्त पवित्र हैं। यद्यपि ऐसे कथन परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, फिर भी हम श्रुतिवाक्य मानकर शंख तथा गोबर को शुद्ध तथा पवित्र होने के रूप में स्वीकार करते हैं।

स्वतः-प्रमाण वेद सत्य येई कय ।
'लक्षणा' करिले स्वतः-प्रामाण्य-हानि हय ॥ १३७॥

स्वतः-प्रमाण वेद सत्य ग्रेइ कय ।
'लक्षणा' करिले स्वतः-प्रामाण्य-हानि हय ॥ १३७॥

स्वतः-प्रमाण—स्वतः प्रमाण; **वेद**—वैदिक साहित्य; **सत्य**—सत्य; **ग्रेइ**—जो कुछ; **कय**—कहते हैं; **लक्षणा**—मनोकल्पना; **करिले**—करके; **स्वतः-प्रामाण्य**—स्वतः प्रमाण की; **हानि**—हानि; **हय**—हो जाती है।

अनुवाद

"वैदिक कथन स्वतः प्रमाण होते हैं। वेदों में वर्णित प्रत्येक कथन को स्वीकार करना चाहिए। यदि हम अपनी खुद की मनोकल्पना से उसकी व्याख्या करते हैं, तो वैदिक प्रमाण की सत्ता तुरन्त नष्ट हो जाती है।"

तात्पर्य

प्रधान प्रमाण चार प्रकार के हैं—प्रत्यक्ष अनुभव, परि-कल्पना (अनुमान), ऐतिहासिक सन्दर्भ तथा वेद। इनमें से वैदिक प्रमाण सर्वोपरि है। यदि हम

श्रुतिवाक्य (वैदिक वाणी) की अनुमानित व्याख्या करना चाहते हैं, तो हम अपनी सुविधा अनुसार मनोकल्पित व्याख्या करेंगे। सर्वप्रथम ऐसी व्याख्या को प्रस्ताव या अनुमान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह वास्तविक रूप में सत्य नहीं होती और उसका स्वत: प्रमाण होना नष्ट हो जाता है।

श्रील मध्वाचार्य ने *दृष्यते तु* (*वेदान्त-सूत्र* २.१.६) सूत्र की टीका करते हुए *भविष्य पुराण* का निम्नलिखित उद्धरण दिया है :

ऋग्यजु:सामाथर्वाश्च भारतं पञ्चरात्रकम्।
मूलरामायणं चैव वेद इत्येव शब्दिता: ॥
पुराणानि च यानीह वैष्णवानि विदो विदु:।
स्वत: प्रामाण्यमेतेषां नात्र किञ्चिद् विचार्यते ॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, महाभारत, पंचरात्र तथा मूल रामायण वैदिक ग्रंथ माने जाते हैं। पुराण (यथा ब्रह्मवैवर्त पुराण, नारदीय पुराण, विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण) विशेषत: वैष्णवों के निमित्त हैं और वे भी वैदिक ग्रंथ हैं। अतएव पुराणों, महाभारत तथा रामायण में जो भी कहा गया है, वह स्वत: प्रमाण है। इनका अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं है। चूँकि *भगवद्गीता* महाभारत का अंश है, अतएव *भगवद्गीता* के सारे कथन स्वत: प्रमाण हैं। फलत: इनके विषय में अनुमान लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। अनुमान लगाने से वैदिक साहित्य की समस्त प्रामाणिकता नष्ट हो जाती है।

ব্যাস-সূত্রের অর্থ—যৈছে সূর্যের কিরণ ।
স্ব-কল্পিত ভাষ্য-মেঘে করে আচ্ছাদন ॥১৩৮॥

व्यास-सूत्रेर अर्थ—य्रैछे सूर्य्रेर किरण ।
स्व-कल्पित भाष्य-मेघे करे आच्छादन ॥ १३८ ॥

व्यास-सूत्रेर—व्यासदेव द्वारा रचित वेदान्त सूत्र के; **अर्थ**—अर्थ; **य्रैछे**—जैसे; **सूर्य्रेर**—सूर्य की; **किरण**—चमकती किरणें; **स्व-कल्पित**—स्वकल्पित; **भाष्य**—भाष्य की; **मेघे**—बादल से; **करे**—करता है; **आच्छादन**—आच्छादित।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, " श्रील व्यासदेव द्वारा रचित *ब्रह्मसूत्र*

सूर्य के समान तेजस्वी है। इसके अर्थ का अनुमान लगाने की चेष्टा सूर्य के इस प्रकाश को केवल बादल से आच्छादित करने के समान है।

वेद-पुराणे कहे ब्रह्म-निरूपण ।
सेइ ब्रह्म—बृहद्वस्तु, ईश्वर-लक्षण ॥ १३९ ॥

वेद-पुराणे कहे ब्रह्म-निरूपण ।
सेइ ब्रह्म—बृहद्वस्तु, ईश्वर-लक्षण ॥ १३९ ॥

वेद-पुराणे—वेदों तथा पुराणों में; **कहे**—यह वर्णित है; **ब्रह्म-निरूपण**—परम की व्याख्या; **सेइ ब्रह्म**—वही ब्रह्म (परम); **बृहत्-वस्तु**—परम; **ईश्वर-लक्षण**—परम भगवान का लक्षण।

अनुवाद

"सारे वेदों तथा वैदिक सिद्धान्तों का अनुगमन करने वाले अन्य साहित्य का निश्चित मत है कि परब्रह्म ही परम सत्य है, सबसे महान है और भगवान् का एक पहलू है।

तात्पर्य

श्रीकृष्ण सब में सर्वोच्च हैं। *भगवद्गीता* (१५.१५) में भगवान् कृष्ण कहते हैं—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*—"सारे वेदों के द्वारा जानने योग्य मैं ही हूँ। *श्रीमद्भागवत* (१.२.११) में कहा गया है कि परम सत्य ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्, इन तीन अवस्थाओं में समझे जाते हैं। (*ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते*) इस प्रकार परम सत्य, ब्रह्म को समझने में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अन्तिम शब्द हैं।

सर्वैश्वर्य-परिपूर्ण स्वयं भगवान् ।
ताँरे निराकार करि' करह व्याख्यान ॥ १४० ॥

सर्वैश्वर्य-परिपूर्ण स्वयं भगवान् ।
ताँरे निराकार करि' करह व्याख्यान ॥ १४० ॥

सर्व-ऐश्वर्य-परिपूर्ण—सर्व ऐश्वर्यों से पूर्ण; **स्वयम्**—स्वयं; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **ताँरे**—उनको; **निराकार**—निराकार; **करि'**—करके; **करह**—आप करते हो; **व्याख्यान**—व्याख्या।

अनुवाद

"वास्तव में परम सत्य एक पुरुष है, पूर्ण पुरुष भगवान् है और सभी ऐश्वर्यों से पूर्णतया युक्त है। आप उनकी व्याख्या निराकार तथा निर्विशेष के रूप में कर रहे हैं।

तात्पर्य

ब्रह्म का अर्थ है *बृहत्त्व* अर्थात् सबसे महान्। सबसे महान् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। उनमें सारी शक्तियाँ तथा सारे ऐश्वर्य पूर्णरूपेण विद्यमान हैं। अतएव परम सत्य, जो सबसे महान् है, वही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् है। कोई चाहे "ब्रह्म" कहे या "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्"—बात एक ही है, क्योंकि ये अभिन्न हैं। *भगवद्गीता* में अर्जुन ने कृष्ण को *परं ब्रह्म परं धाम* के रूप में स्वीकार किये हैं। यद्यपि कभी-कभी जीवों को अथवा भौतिक प्रकृति को ब्रह्म कहा जाता है, किन्तु फिर भी परब्रह्म, जो सभी ब्रह्मों में श्रेष्ठ हैं, पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। वे सभी ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं, अत: उनके पास सारी सम्पत्ति, सारा बल, सारा यश, सारा ज्ञान, सारा सौन्दर्य तथा सारा वैराग्य रहता है। वे शाश्वत रूप से पुरुष हैं और वे शाश्वत रूप से सर्वोपरि हैं। यदि कोई निराकार कहकर उनकी व्याख्या करता है, तो वह ब्रह्म के वास्तविक अर्थ को आच्छादित करता है।

'निर्विशेष' ताँरे कहे येई श्रुति-गण ।
'प्राकृत' निषेधि करे 'अप्राकृत' स्थापन ॥ १४१ ॥

'निर्विशेष' ताँरे कहे येइ श्रुति-गण ।
'प्राकृत' निषेधि करे 'अप्राकृत' स्थापन ॥ १४१ ॥

निर्विशेष—निर्विशेष; **ताँरे**—उनको; **कहे**—कहते हैं; **येइ**—जो कुछ; **श्रुति-गण**—वेद; **प्राकृत**—सांसारिक, प्राकृत; **निषेधि**—निषेध करके; **करे**—करते हैं; **अप्राकृत**—दिव्य; **स्थापन**—पुष्टि।

अनुवाद

"वेदों में जहाँ कहीं भी निराकार का वर्णन हुआ है, वहाँ वेदों का उद्देश्य यह स्थापित करना है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से सम्बन्धित हर वस्तु दिव्य है और भौतिक गुणों से सर्वथा स्वतन्त्र है।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में अनेक निर्विशेष कथन मिलते हैं। जैसाकि *श्वेताश्वतर उपनिषद* (३.१९) में कहा गया है :

अपाणिपादो जवनो गृहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

यद्यपि भगवान् बिना हाथों और पैरों के बतलाये गये हैं, फिर भी वे यज्ञों की सारी आहुतियाँ स्वीकार करते हैं। यद्यपि उनकी आँखें नहीं हैं, फिर भी वे सब कुछ देखते हैं। यद्यपि उनके कान नहीं हैं, किन्तु वे सब कुछ सुनते हैं। जब यह कहा जाता है कि भगवान् के हाथ, पैर नहीं है, तो हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि वे निराकार या निर्विशेष हैं। प्रत्युत उनके हाथ या पाँव हमारी तरह भौतिक नहीं हैं। "उनकी आँखें नहीं हैं, फिर भी वे सब कुछ देखते हैं।" इसका अर्थ यह है कि उनकी आँखें हमारी तरह भौतिक और सीमित नहीं हैं। प्रत्युत उनके पास ऐसी आँखें हैं, जिनसे वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य को, ब्रह्माण्ड के कोने-कोने में और सारे जीवों के हृदय के कोने-कोने में झाँक सकते हैं। इस तरह वेदों के निर्विशेष कथनों का आशय भगवान् में भौतिक गुणों का निषेध करना है। उनका उद्देश्य भगवान् को निर्विशेष रूप में स्थापित करना नहीं है।

या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं
सा साभिधत्ते स-विशेषमेव ।
विचार-योगे सति हन्त तासां
प्रायो बलीयः स-विशेषमेव ॥ १४२॥

या या—जो जो; **श्रुतिः**—वैदिक स्तोत्र; **जल्पति**—वर्णन करते हैं; **निर्विशेषम्**—निर्विशेष सत्य; **सा**—वह; **सा**—वह; **अभिधत्ते**—सीधा वर्णन करते हैं; **स-विशेषम्**—

व्यक्तित्व; **एव**—एव; **विचार-योगे**—बुद्धि द्वारा स्वीकृत किये जाने पर; **सति**—होकर; **हन्त**—खेद है; **तासाम्**—सभी वैदिक मंत्रों का; **प्रायः**—प्रायः; **बलीयः**—अधिक शक्तिशाली; **स-विशेषम्**—व्यक्तिगत रूप से; **एव**—अवश्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, '"परम सत्य को निराकार वर्णित करने वाले मंत्र अन्त में यही सिद्ध करते हैं कि परम सत्य एक पुरुष है। भगवान् निराकार तथा साकार इन दो रूपों में समझे जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को इन दोनों रूपों में मानता है, तो वह सचमुच परम सत्य को समझ सकता है। वह जानता है कि साकार ज्ञान सशक्त है, क्योंकि हम देखते हैं कि हर वस्तु विविधता से पूर्ण है। कोई व्यक्ति ऐसी वस्तु नहीं देख सकता जो विविधता से पूर्ण न हो।'

तात्पर्य

यह कवि कर्णपूर रचित *चैतन्य चन्द्रोदय नाटक* (६.६७) से उद्धरण है।

ब्रह्म हैते जन्मे विश्व, ब्रह्मेते जीवय ।
सेई ब्रह्मे पुनरपि हये याय लय ॥ १४३॥

ब्रह्म हैते जन्मे विश्व, ब्रह्मेते जीवय ।
सेइ ब्रह्मे पुनरपि हये याय लय ॥ १४३॥

ब्रह्म हैते—परम ब्रह्म से; **जन्मे**—उत्पन्न होता है; **विश्व**—सारा विश्व; **ब्रह्मेते**—परम सत्य में; **जीवय**—विद्यमान रहता है; **सेइ**—उसी; **ब्रह्मे**—परम सत्य में; **पुनरपि**—फिर; **हये**—होकर; **याय**—जाता है; **लय**—प्रलय को।

अनुवाद

"इस विराट जगत् की प्रत्येक वस्तु परम सत्य से उत्पन्न होती है, उसी में रहती है और प्रलय के बाद पुनः परम सत्य में प्रवेश करती है।

तात्पर्य

तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है—*यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते*—"सारा भौतिक जगत् परम ब्रह्म से उत्पन्न होता है।" *ब्रह्मसूत्र* का भी प्रारम्भ इस श्लोक (*भागवतम्* १.१.२) से होता है—*जन्माद्यस्य यतः*—"परम सत्य

वे हैं, जिनसे प्रत्येक वस्तु उद्भूत होती है।" ये परम सत्य कृष्ण हैं। *भगवद्गीता* (१०.८) में कृष्ण कहते हैं—*अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते*—"मैं समस्त आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों का उद्गम हूँ। मुझ से ही हर वस्तु उत्पन्न होती है।" अतएव कृष्ण ही आदि परम सत्य हैं, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। *भगवद्गीता* में ही (९.४) कृष्ण फिर कहते हैं—*मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना*—यह सारा जगत् मेरे अव्यक्त रूप से मेरे द्वारा व्याप्त है। और जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.३७) में पुष्टि हुई है—*गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतः*—"यद्यपि भगवान् सदैव अपने धाम गोलोक वृन्दावन में निवास करते हैं, फिर भी वे सर्वव्यापक हैं।" उनका सर्वव्यापक पहलू निराकार माना जाता है, क्योंकि सर्वव्यापकता में भगवान् का साकार रूप दिखाई नहीं देता। वास्तव में हर वस्तु उनके शारीरिक तेज की किरणों पर आश्रित है। *ब्रह्म-संहिता* (५.४०) में भी आया है :

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि
कोटिष्वशेषवसुधादिविभूति भिन्नम्।

भगवान् के शारीरिक तेज की किरणों के कारण लाखों लोकों की सृष्टि होती है, जिस प्रकार सूर्य से ग्रहों की उत्पत्ति होती है।

'अपादान,' 'करण,' 'अधिकरण'-कारक तिन ।
भगवानेर सविशेषे एइ तिन चिह्न ॥ १४४॥

'अपादान,' 'करण,' 'अधिकरण'-कारक तिन ।
भगवानेर सविशेषे एइ तिन चिह्न ॥ १४४॥

अपादान—अपादान; **करण**—करण; **अधिकरण**—अधिकरण; **कारक**—कारक; **तिन**—तीन; **भगवानेर**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान के; **स-विशेष**—व्यक्तित्व में; **एइ**—ये; **तिन**—तीन; **चिह्न**—लक्षण।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साकार स्वरूप की तीन श्रेणियाँ हैं—अपादान, करण तथा अधिकरण।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में कहते हैं कि उपनिषदों के आदेशानुसार सारा ब्रह्माण्ड, ब्रह्म अर्थात् परम सत्य से उत्पन्न है ("परम सत्य वे हैं, जिनसे सब कुछ उद्भूत हुआ है")। इस सृष्टि का पालन परम ब्रह्म की शक्ति द्वारा होता है और प्रलय के बाद यह परम ब्रह्म में समा जाती है। इससे हम यह समझ सकते हैं कि परम सत्य की तीन श्रेणियाँ हैं—अपादान, करण तथा अधिकरण। इन तीन कारकों के अनुसार परम सत्य निश्चित रूप से साकार है। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती *ऐतरेय उपनिषद* (१.१.१) से उद्धरण देते हैं :

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन् नान्यत् किञ्चनमिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति॥ इसी प्रकार *श्वेताश्वतर उपनिषद्* (४.९) में कहा गया है :

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि
भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति।
यस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्
तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः॥

और *तैत्तिरीय उपनिषद्* (३.१) में भी :

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म॥ जब वारुणी भृगु ने परम सत्य के विषय में अपने पिता वरुण से प्रश्न किया, तो वरुण ने यह उत्तर दिया था। इस मन्त्र में *यतः* शब्द, जो परम सत्य का सूचक है और जिनसे यह विश्व उत्पन्न हुआ है, अपादान कारक में है। जिस ब्रह्म द्वारा इस विश्व का पालन होता है, वह करण कारक (*येन*) है और वह ब्रह्म जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि विलीन होती है, वह अधिकरण कारक (*यत्* अथवा *यस्मिन्*) है। *श्रीमद्भागवतम्* (१.५.२०) में कहा गया है :

इदं हि विश्वं भगवान् इवेतरो
यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवाः॥

"सम्पूर्ण जगत् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विराट रूप में समाहित है।

प्रत्येक वस्तु उनसे उत्पन्न होती है, उनकी शक्ति पर स्थित रहती है और प्रलय के बाद उन्हीं के व्यक्तित्व में फिर से समा जाती है।"

ভগবান্‌বহু হৈতে যবে কৈল মন ।
প্রাকৃত-শক্তিতে তবে কৈল বিলোকন ॥১৪৫॥
সে কালে নাহি জন্মে 'প্রাকৃত' মনো-নয়ন ।
অতএব 'অপ্রাকৃত' ব্রহ্মের নেত্র-মন ॥১৪৬॥

भगवान् बहु हैते ग्रबे कैल मन ।
प्राकृत-शक्तिते तबे कैल विलोकन ॥ १४५ ॥
से काले नाहि जन्मे 'प्राकृत' मनो-नयन ।
अतएव 'अप्राकृत' ब्रह्मेर नेत्र-मन ॥ १४६ ॥

भगवान्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **बहु**—अनेक; **हैते**—होना; **ग्रबे**—जब; **कैल**—किया; **मन**—उनका मन; **प्राकृत**—भौतिक; **शक्तिते**—शक्ति पर; **तबे**—उस समय; **कैल**—किया; **विलोकन**—देखा; **से काले**—उस समय; **नाहि**—नहीं; **जन्मे**—सृष्टि में; **प्राकृत**—भौतिक; **मनः-नयन**—मन तथा नयन; **अतएव**—अतएव; **अप्राकृत**—दिव्य; **ब्रह्मेर**—परम सत्य के; **नेत्र-मन**—नयन और मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने अनेक होने की इच्छा की, तब उन्होंने भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात किया। सृष्टि के पूर्व भौतिक नेत्रों या मन का आस्तित्व नहीं था, अतएव परम सत्य के मन तथा नेत्रों की दिव्य प्रकृति की पुष्टि होती है।

तात्पर्य

छान्दोग्य उपनिषद् (६.२.३) में कहा गया है—*तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय।* इस श्लोक से इसकी पुष्टि होती है कि जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अनेक बनना चाहते हैं, तो भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात् मात्र से ही सृष्टि प्रकट हो जाती है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि इस जगत् की सृष्टि के पूर्व भगवान् ने भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात् किया। सृष्टि के पूर्व न तो भौतिक मन था, न भौतिक नेत्र; अतएव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने जिस मन से सृष्टि करनी चाही

वह दिव्य है और जिन आँखों से उन्होंने भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात् किया, वे भी दिव्य हैं। इस प्रकार भगवान् का मन, नेत्र तथा अन्य इन्द्रियाँ दिव्य हैं।

ब्रह्म-शब्दे कहे पूर्ण स्वयं भगवान् ।
स्वयं भगवान्कृष्ण,—शास्त्रेर प्रमाण ॥ १४७ ॥

ब्रह्म-शब्दे कहे पूर्ण स्वयं भगवान् ।
स्वयं भगवान्कृष्ण,—शास्त्रेर प्रमाण ॥ १४७ ॥

ब्रह्म-शब्दे—ब्रह्म शब्द से; **कहे**—संकेत होता है; **पूर्ण**—पूर्ण; **स्वयम्**—स्वयं; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **स्वयम्**—स्वयं; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **शास्त्रेर प्रमाण**—सभी वैदिक साहित्यों का निष्कर्ष।

अनुवाद

"'ब्रह्म' शब्द पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सूचित करता है, जो स्वयं श्रीकृष्ण हैं। यही समस्त वैदिक साहित्य का निर्णय है।

तात्पर्य

इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में भी (१५.१५) हुई है, जहाँ भगवान् कहते हैं—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः।* समस्त वैदिक साहित्य का चरम ध्येय कृष्ण हैं। हर कोई उन्हें ही खोज रहा है। इसकी भी पुष्टि *भगवद्गीता* (७.१९) में हुई है :

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

"जो वास्तव में ज्ञानवान है, वह अनेकानेक जन्म-जन्मांतरों के बाद मुझे ही समस्त कारणों का कारण जानकर मेरी शरण में आता है। ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।"

जब कोई व्यक्ति वैदिक साहित्य का अध्ययन करके वास्तव में ज्ञानवान बन जाता है, तब वह वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करता है। इसकी भी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* (१.२.७-८) में हुई है :

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्॥
धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

वासुदेव को जानना ही वास्तविक ज्ञान है। वासुदेव अर्थात् कृष्ण की भक्तिमय सेवा में लगकर मनुष्य पूर्ण ज्ञान तथा वैदिक जानकारी प्राप्त करता है। इस तरह वह भौतिक जगत् से विरक्त हो जाता है। यही मानव जीवन की पूर्णता है। यदि यह पूर्णता प्राप्त नहीं हो पाती, तो मनुष्य चाहे जो भी धार्मिक अनुष्ठान करे तथा उत्सव मनाये, यह सब समय का अपव्यय मात्र है (*श्रम एव हि केवलम्*)।

विश्व के सृजन के पूर्व पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पूर्णतया दिव्य मन तथा नेत्र थे। वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। कोई व्यक्ति यह सोच सकता है कि उपनिषदों में कृष्ण का सीधा उल्लेख नहीं है, किन्तु वास्तविकता यह है कि वैदिक मन्त्रों को भौतिक इन्द्रियों से नहीं समझा जा सकता। जैसाकि *पद्म-पुराण* का कथन है—*अतः श्रीकृष्ण नामादि न भवेद् ग्राह्यम् इन्द्रियैः*—भौतिक इन्द्रियों द्वारा व्यक्ति श्रीकृष्ण के गुणों, रूप और लीलाओं को पूरी तरह नहीं समझ सकता। इसलिए पुराण वैदिक ज्ञान की व्याख्या करने और उसके पूरक बनने के निमित्त हैं। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने जनसामान्य के लिए (*स्त्री-शूद्र-द्विज-बन्धूनाम्*) वैदिक मन्त्र सुलभ बनाने के लिए पुराणों की रचना की। क्योंकि स्त्रियाँ, शूद्र तथा द्विज-बन्धु (द्विजों के अयोग्य पुत्र) वैदिक श्लोकों को प्रत्यक्ष रूप में नहीं समझ सकते, अतः श्रील व्यासदेव ने *महाभारत* की रचना की। वास्तव में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् *वेदेषु दुर्लभम्* (वेदों में अप्राप्य) हैं, किन्तु जब वेदों को ठीक से आत्मसात् कर लिया जाता है अथवा भक्तों से वैदिक ज्ञान प्राप्त किया जाता है, तो मनुष्य यह समझ सकता है कि सारे वैदिक ज्ञान के लक्ष्य श्रीकृष्ण हैं।

ब्रह्मसूत्र (१.१.३) से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है—*शास्त्र योनित्वात्*। इस सूत्र की टीका करते हुए श्री मध्वाचार्य कहते हैं—"ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, महाभारत, पंचरात्र तथा मूल वाल्मीकि रामायण—ये सभी वैदिक साहित्य हैं। जो भी साहित्य इन वैदिक साहित्यों के निष्कर्षों के अनुरूप होता है, वह भी वैदिक साहित्य माना जाता है। जो साहित्य वैदिक साहित्य के अनुरूप नहीं है, वह भ्रामक है।" अतएव वैदिक साहित्य का अध्ययन करते समय हमें महान् आचार्यों द्वारा दिखाये गये मार्ग का अनुसरण करना चाहिए—

महाजनो येन गत: स पन्था:। यदि मनुष्य महान् आचार्यों के मार्ग का अनुगमन नहीं करता है, तो वह वेदों के वास्तविक तात्पर्य को नहीं समझा जा सकता।

वेदेर निगूढ़ अर्थ बुझन ना हय ।
पुराण-वाक्ये सेइ अर्थ करय निश्चय ॥ १४८ ॥

वेदेर निगूढ़ अर्थ बुझन ना हय ।
पुराण-वाक्ये सेइ अर्थ करय निश्चय ॥ १४८ ॥

वेदेर—वैदिक साहित्य का; **निगूढ़**—गूढ़; **अर्थ**—अर्थ; **बुझन**—समझ; **ना**—नहीं; **हय**—है; **पुराण-वाक्ये**—पुराणों के कथन से; **सेइ**—वह; **अर्थ**—अर्थ; **करय**—हो जाता है; **निश्चय**—स्पष्ट।

अनुवाद

"साधारण लोग आसानी से वेदों के गूढ़ अर्थ को नहीं समझ पाते, इसलिए उसकी पूर्ति पुराणों के वाक्यों द्वारा की जाती है।

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्द-गोप-व्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ १४९ ॥

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्द-गोप-व्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ १४९ ॥

अहो—कितना महान्; **भाग्यम्**—भाग्य; **अहो**—कितना महान्; **भाग्यम्**—भाग्य; **नन्द**—महाराज नन्द का; **गोप**—अन्य गोपों का; **व्रज-ओकसाम्**—व्रजभूमि के निवासियों का; **यत्**—जिनके; **मित्रम्**—मित्र; **परम-आनन्दम्**—परम आनन्द; **पूर्णम्**—पूर्ण; **ब्रह्म**—परम सत्य; **सनातनम्**—सनातन।

अनुवाद

"'नन्द महाराज, गोप तथा व्रजभूमि के सारे निवासी कितने भाग्यशाली हैं! उनके भाग्य की कोई सीमा नहीं है, क्योंकि दिव्य आनन्द के स्त्रोत सनातन परम ब्रह्म, परम सत्य उनके मित्र बन चुके हैं।'

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (१०.१४.३२) का यह श्लोक ब्रह्माजी द्वारा बोला गया है।

'अपाणि-पाद'-श्रुति वर्जे 'प्राकृत' पाणि-चरण ।
पुनः कहे, शीघ्र चले, करे सर्व ग्रहण ॥ १५० ॥

'अपाणि-पाद'-श्रुति वर्जे 'प्राकृत' पाणि-चरण ।
पुनः कहे, शीघ्र चले, करे सर्व ग्रहण ॥ १५० ॥

अपाणि-पाद-श्रुति—*अपाणि-पाद,* से शुरु होनेवाला श्रुति मंत्र; **वर्जे**—त्यागता है; **प्राकृत**—भौतिक; **पाणि-चरण**—हाथ पाँव; **पुनः**—पुनः; **कहे**—कहता है; **शीघ्र चले**—बहुत तेज चलते हैं; **करे**—करते हैं; **सर्व**—प्रत्येक वस्तु; **ग्रहण**—स्वीकार।

अनुवाद

"*अपाणि-पाद*—वैदिक मन्त्र भौतिक हाथों तथा पाँवों का निषेध करता है, फिर भी यह बतलाता है कि भगवान् अत्यन्त तेज चलते हैं और अर्पित की जाने वाली हर वस्तु को ग्रहण करते हैं।

अतएव श्रुति कहे, ब्रह्म—सविशेष ।
'मुख्य' छाड़ि' 'लक्षणा'ते माने निर्विशेष ॥ १५१ ॥

अतएव श्रुति कहे, ब्रह्म—सविशेष ।
'मुख्य' छाड़ि' 'लक्षणा'ते माने निर्विशेष ॥ १५१ ॥

अतएव—अतएव; **श्रुति**—वैदिक मन्त्र; **कहे**—कहते हैं; **ब्रह्म**—परम सत्य; **स-विशेष**—साकार; **मुख्य**—सीधे अर्थ; **छाड़ि'**—छोड़कर; **लक्षणा'ते**—अर्थ लगाने से; **माने**—स्वीकार करते हैं; **निर्विशेष**—निर्विशेष।

अनुवाद

"ये सभी मन्त्र इसकी पुष्टि करते हैं कि परम सत्य साकार है, किन्तु मायावादी मुख्य अर्थ को त्यागकर परम सत्य का निराकार या निर्विशेष के रूप में अर्थ लगाते हैं।

तात्पर्य

जैसा ऊपर कहा गया है, *श्वेताश्वतर उपनिषद्* (३.१९) के अनुसार :

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥

इस वैदिक मन्त्र स्पष्ट रूप से कहता है—*पुरुषं महान्तम्।* *पुरुष* शब्द का अर्थ है "व्यक्ति।" इस पुरुष के कृष्ण होने की पुष्टि *भगवद्गीता* (१०.१२) में अर्जुन द्वारा की गई है, जब वह कृष्ण को *पुरुषं शाश्वतम्* ("आप आदि पुरुष हैं") कहकर सम्बोधित करता है। अत: *श्वेताश्वतर उपनिषद्* के इस श्लोक में वर्णित *पुरुषं महान्तम्* श्रीकृष्ण हैं। उनेक हाथ-पाँव भौतिक नहीं हैं, अपितु पूर्णतया दिव्य हैं। किन्तु जब वे प्रकट होते हैं, तो मूर्ख लोग उन्हें सामान्य व्यक्ति मान बैठते हैं (*अवजानन्ति मां मूढा: मानुषीं तनुमाश्रितम्*)। जिसे वैदिक ज्ञान नहीं है, जिसने प्रामाणिक गुरु से वेदों का अध्ययन नहीं किया है, वह कृष्ण को नहीं जान पाता। अतएव वह *मूढ* है। ऐसे मूर्ख लोग कृष्ण को सामान्य व्यक्ति मान बैठते हैं (*परं भावमजानन्त:*)। वे वास्तविक रूप में जान ही नहीं पाते कि कृष्ण क्या हैं। *मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।* केवल वेदों का गहन अध्ययन करने से कृष्ण को नहीं समझे जा सकते। मनुष्य को किसी भक्त (*यत्पादम्*) की कृपा प्राप्त करनी आवश्यक है। भक्त की कृपा हुए बिना मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नहीं समझ सकता। *भगवद्गीता* (१०.१४) में अर्जुन भी इसकी पुष्टि करता है, "हे प्रभु, आपको समझ पाना अत्यन्त कठिन है।" अल्पज्ञानी व्यक्ति भगवद्-भक्त की कृपा बिना भगवान् को नहीं समझ सकते। इसीलिए *भगवद्गीता* (४.३४) में एक अन्य आदेश है :

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन:॥

मनुष्य को प्रामाणिक गुरु के पास जाकर उसकी शरण लेनी चाहिए। तभी वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को एक व्यक्ति के रूप में समझ सकता है।

षड्-ऐश्वर्य-पूर्णानन्द-विग्रह याँहार ।
हेन-भगवाने तुमि कह निराकार ? ॥१५२॥

षड्-ऐश्वर्य-पूर्णानन्द-विग्रह याँहार ।
हेन-भगवाने तुमि कह निराकार ? ॥१५२॥

षट्-ऐश्वर्य-पूर्ण—छह ऐश्वर्यों से पूर्ण; **आनन्द**—आनन्दमय; **विग्रह**—विग्रह; **याँहार**—

जिनका; **हेन-भगवाने**—उन भगवान् को; **तुमि**—आप; **कह**—कहते हो; **निराकार**—निराकार।

अनुवाद

"जिन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दिव्य स्वरूप छह दिव्य ऐश्वर्यों से युक्त है, क्या आप उन्हें निराकार कह रहे हैं?

तात्पर्य

यदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् निराकार हैं, तो फिर ऐसा किस प्रकार कहा जाता है कि वे अत्यन्त तीव्र गति से चलते हैं तथा अर्पित की गई वस्तुओं को ग्रहण करते हैं? मायावादी दार्शनिक वैदिक मन्त्रों के मुख्य अर्थ को त्यागकर उनका अर्थ लगाते हैं और परम सत्य को निराकार बतलाने की चेष्टा करते हैं। वस्तुत: भगवान् सनातन, साकार तथा ऐश्वर्यों से युक्त हैं। मायावादी दार्शनिक परम सत्य की व्याख्या शक्तिरहित कहकर करते हैं। किन्तु *श्वेताश्वतर उपनिषद्* (६.८) में स्पष्ट कहा गया है—*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*—"परम सत्य की विविध शक्तियाँ हैं।"

स्वाभाविक तिन शक्ति येई ब्रह्मे हय ।
'निःशक्तिक' करि' ताँरे करह निश्चय? ॥ १५३॥

स्वाभाविक तिन शक्ति येइ ब्रह्मे हय ।
'नि:शक्तिक' करि' ताँरे करह निश्चय? ॥ १५३॥

स्वाभाविक—स्वाभाविक; **तिन**—तीन; **शक्ति**—शक्तियाँ; **येइ**—जो; **ब्रह्मे**—परम सत्य में; **हय**—हैं; **नि:शक्तिक**—शक्ति रहित; **करि'**—करके; **ताँरे**—उनको; **करह**—आप करते हो; **निश्चय**—प्रमाण।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की तीन मूल शक्तियाँ होती हैं। तो क्या आप यह सिद्ध करना चाहते हैं कि उनकी शक्तियाँ नहीं होतीं?

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् की विभिन्न शक्तियाँ बतलाने के लिए *विष्णु पुराण* के चार श्लोक (६.७.६१-६३ तथा १.१२.६९) उद्धृत कर रहे हैं।

विष्णु-शक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्र-ज्ञाख्या तथा परा ।
अविद्या-कर्म-संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥ १५४ ॥

विष्णु-शक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्र-ज्ञाख्या तथा परा ।
अविद्या-कर्म-संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥ १५४ ॥

विष्णु-शक्तिः—भगवान् विष्णु की अन्तरंगा शक्ति; **परा**—आध्यात्मिक; **प्रोक्ता**—कही गई है; **क्षेत्र-ज्ञ**—क्षेत्रज्ञ (जीव); **आख्या**—जानी जाती है; **तथा**—तथा; **परा**—आध्यात्मिक; **अविद्या**—अज्ञान; **कर्म**—और सकाम कर्म; **संज्ञा**—जानी जाती है; **अन्या**—अन्य, दूसरी; **तृतीया**—तीसरी; **शक्तिः**—शक्ति; **इष्यते**—मानी जाती है।

अनुवाद

"'जैसाकि शास्त्रों में कहा गया है, भगवान् विष्णु की अन्तरंगा शक्ति आध्यात्मिक है। एक अन्य आध्यात्मिक शक्ति है, जो क्षेत्रज्ञ या जीव कहलाती है। तीसरी शक्ति अविद्या कहलाती है, जो जीव को ईश्वरविहीन (निरीश्वर) बनाती है और उसे सकाम कर्म से पूरित करती है।

तात्पर्य

भगवद्गीता में *क्षेत्र* तथा *क्षेत्रज्ञ* के विषय में कृष्ण की वार्ता में यह स्पष्ट कहा गया है कि जीव *क्षेत्रज्ञ* है, जो अपने कर्म के क्षेत्र को जानता है। भौतिक जगत् में जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अपना सम्बन्ध भूले हुए हैं। यह विस्मृति *अविद्या* कहलाती है। भौतिक जगत् की यह अविद्या शक्ति सकाम कर्म के लिए प्रोत्साहित करती है। यद्यपि यह अविद्या शक्ति (भौतिक शक्ति) भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति है, किन्तु यह जीवों को विस्मृति की अवस्था में रखने के निमित्त है। यह जीवों में भगवान् के प्रति विद्रोह की भावना के कारण है। इस प्रकार जीव वैधानिक रूप से आध्यात्मिक होते हुए भी अविद्या शक्ति के प्रभाव में आ जाते हैं। यह किस प्रकार होता है, उसका वर्णन अगले श्लोक में किया गया है।

यया क्षेत्र-ज्ञ-शक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्व-गा ।
संसार-तापानखिलानवाप्नोत्यत्र सन्ततान् ॥ १५५ ॥

यया क्षेत्र-ज्ञ-शक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्व-गा ।
संसार-तापानखिलानवाप्नोत्यत्र सन्ततान् ॥ १५५ ॥

यया—जिससे; **क्षेत्र-ज्ञ-शक्तिः**—क्षेत्रज्ञ शक्ति अर्थात् जीव; **सा**—वह शक्ति; **वेष्टिता**—ढकी है; **नृप**—हे राजन्; **सर्व-गा**—आध्यात्मिक अथवा भौतिक जगत् में कहीं भी जाने में सक्षम; **संसार-तापान्**—बारम्बार जन्म मरण के कारण सांसारिक कष्ट; **अखिलान्**—सभी प्रकार के; **अवाप्नोति**—प्राप्त करता है; **अत्र**—इस भौतिक जगत् में; **सन्ततान्**—विविध सकाम कर्मों के फलस्वरूप मिलने वाले सुख-दुःख।

अनुवाद

"'हे राजन्, क्षेत्रज्ञ शक्ति जीव है। यद्यपि उसे भौतिक में अथवा तो आध्यात्मिक जगत् में रहने की सुविधा प्राप्त है, किन्तु वह अविद्या शक्ति के वशीभूत होकर भौतिक जगत् के तीन प्रकार के कष्टों को भोगता है, क्योंकि यह शक्ति उसकी स्वाभाविक वैधानिक स्थिति को आच्छादित कर लेती है।

तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षेत्र-ज्ञ-संज्ञिता ।
सर्व-भूतेषु भू-पाल तारतम्येन वर्तते ॥ १५६॥
तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षेत्र-ज्ञ-संज्ञिता ।
सर्व-भूतेषु भू-पाल तारतम्येन वर्तते ॥ १५६ ॥

तया—उससे; **तिरोहितत्वात्**—प्रभाव से मुक्त हो जाने के कारण; **च**—तथा; **शक्तिः**—शक्ति; **क्षेत्र-ज्ञ**—क्षेत्रज्ञ; **संज्ञिता**—नाम से जानी जाने वाली; **सर्व-भूतेषु**—विविध शरीरों में; **भू-पाल**—हे राजन्; **तारतम्येन**—विविध मात्रा में; **वर्तते**—वर्तमान है।

अनुवाद

"'अविद्या के प्रभाव में आच्छादित होकर यह जीव भौतिक अवस्था में विभिन्न रूपों में विद्यमान रहता है। हे राजन्, इस तरह वह कम या अधिक मात्रा में भौतिक शक्ति के प्रभाव के अनुपात में मुक्त रहता है।'

तात्पर्य

भौतिक शक्ति जीव पर विभिन्न मात्राओं में प्रभाव दिखलाती है। यह प्रभाव जीव द्वारा भौतिक प्रकृति के तीन गुणों का सान्निध्य प्राप्त करने पर निर्भर करता है। कुल ८४,००,००० योनियाँ हैं, जिनमें से कुछ निम्न हैं, कुछ उच्च और कुछ मध्यम हैं। शरीरों का वर्गीकरण भौतिक शक्ति के आच्छादन की मात्रा के अनुसार किया जाता है। निम्न श्रेणियों में—यथा जलचर, वृक्ष, पौधे, कीड़े,

पक्षी आदि में आध्यात्मिक चेतना का प्राय: अभाव रहता है। मध्य श्रेणी में—जिसमें मनुष्य आता है, आध्यात्मिक चेतना अपेक्षतया अधिक जाग्रत रहती है। उच्च श्रेणी में, आध्यात्मिक चेतना पूर्णत: जाग्रत होती है। तब जीव अपनी वास्तविक स्थिति को समझता है और कृष्णभावना विकसित करके भौतिक शक्ति के प्रभाव से बचने की चेष्टा करता है।

হ্লাদিনী সন্ধিনী সম্বিত্তয়্যেকা সর্ব-সংশ্রয়ে ।
হ্লাদ-তাপ-করী মিশ্রা ত্বয়ি নো গুণ-বর্জিতে ॥ ১৫৭॥

হ্লাদিনী সন্ধিনী সম্বিত্ত্বয্যেকা সর্ব-সংশ্রয়ে ।
হ্লাদ-তাপ-করী মিশ্রা ত্বয়ি নো গুণ-বর্জিতে ॥ ১৫৭॥

হ্লাদিনী—হ্লাদিনী শক্তি; **সন্ধিনী**—শাশ্বত শক্তি; **সম্বিত্**—জ্ঞান শক্তি; **ত্বয়ি**—আপ में; **একা**—एक आध्यात्मिक (*चित्*) शक्ति; **सर्व-संश्रये**—सबका आश्रय; **হ্লাদ**—आनन्द; **তাপ-করী**—दु:ख उपजाने वाला; **মিশ্রা**—मिश्रित; **ত্বয়ি**—आप में; **ন উ**—नहीं; **গুণ-বর্জিতে**—सभी भौतिक गुणों से रहित।

अनुवाद

"'पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सच्चिदानन्द विग्रह हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उनमें मूलत: तीन शक्तियाँ हैं—ह्लादिनी (आनन्द), सन्धिनी (शाश्वतता) तथा सम्वित् (ज्ञान-शक्ति)। ये सभी मिलकर चित् शक्ति कहलाती हैं और भगवान् में ये पूर्णरूपेण पाई जाती हैं। भगवान् के अंशरूप जीवों के लिए भौतिक जगत् में ह्लादिनी शक्ति कभी अरुचिकर होती है और कभी मिश्रित होती है। किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ ऐसा नहीं है, क्योंकि वे भौतिक शक्ति या उसके गुणों से प्रभावित नहीं होते।'

সচ্চিদানন্দ-ময় হয় ঈশ্বর-স্বরূপ ।
তিন অংশে চিচ্ছক্তি হয় তিন রূপ ॥ ১৫৮॥

सच्चिदानन्द-मय हय ईश्वर-स्वरूप ।
तिन अंशे चिच्छक्ति हय तिन रूप ॥ १५८॥

सत्-चित्-आनन्द-मय—शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द युक्त; **हय**—हैं; **ईश्वर**—परमेश्वर का; **स्वरूप**—दिव्य रूप; **तिन अंशे**—तीन भागों में; **चित्-शक्ति**—चित् शक्ति; **हय**—होती है; **तिन**—तीन; **रूप**—रूप।

अनुवाद

"अपने आदि रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द से परिपूर्ण हैं। इन तीनों अंशों (सत्, चित्, आनन्द) में आध्यात्मिक शक्ति तीन विभिन्न रूप ग्रहण करती है।

तात्पर्य

समस्त वैदिक साहित्य के निर्णय के अनुसार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, जीव तथा माया (भौतिक जगत्) ज्ञान के विषय हैं। हर व्यक्ति को इनके परस्पर सम्बन्ध को समझने का प्रयास करना चाहिए। सर्वप्रथम उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वभाव जानने की चेष्टा करनी चाहिए। शास्त्रों से हमें पता चलता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सच्चिदानन्द रूप हैं, अर्थात् शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द से युक्त हैं। जैसाकि श्लोक १५४ में कहा गया है (*विष्णु शक्तिः परा प्रोक्ता*) पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् समस्त शक्तियों के आगार हैं और उनकी ये सारी शक्तियाँ आध्यात्मिक हैं।

আনন্দাংশে 'হ্লাদিনী,' সদংশে 'সন্ধিনী' ।
চিদংশে 'সম্বিৎ', যারে জ্ঞান করি মানি ॥ ১৫৯ ॥

आनन्दांशे 'ह्लादिनी,' सदंशे 'सन्धिनी' ।
चिदंशे 'सम्वित्', यारे ज्ञान करि मानि ॥ १५९ ॥

आनन्द-अंशे—आनन्द भाग में; **ह्लादिनी**—ह्लादिनी शक्ति; **सत्-अंशे**—सत्-भाग में (शाश्वत रूप में); **सन्धिनी**—सन्धिनी शक्ति; **चित्-अंशे**—चित् (ज्ञान) अंश में; **सम्वित्**—सम्वित् शक्ति; **यारे**—जिसे; **ज्ञान**—ज्ञान रूप में; **करि मानि**—हम स्वीकार करते हैं।

अनुवाद

"आध्यात्मिक शक्ति के तीन अंश ह्लादिनी (आनन्द अंश), सन्धिनी (सत् अंश) तथा सम्वित् (चित् या ज्ञान अंश) कहलाते हैं। हम इन तीनों के ज्ञान को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पूर्ण ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हैं।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्य को उनकी सम्वित् शक्ति की शरण लेनी आवश्यक है।

अन्तरङ्गा—चिच्छक्ति, तटस्था—जीव-शक्ति ।
बहिरङ्गा—माया,—तिने करे प्रेम-भक्ति ॥ १६० ॥

अन्तरङ्गा—अन्तरंगा शक्ति; **चित्-शक्ति**—आध्यात्मिक शक्ति; **तटस्था**—तटस्था शक्ति; **जीव-शक्ति**—जीव; **बहिरङ्गा**—बहिरंगा शक्ति; **माया**—माया; **तिने**—ये तीनों; **करे**—करती हैं; **प्रेम-भक्ति**—प्रेमाभक्ति।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति भी तीन अवस्थाओं में प्रकट होती है—अन्तरंगा, तटस्था तथा बहिरंगा। ये सभी उनकी प्रेमाभक्ति में लगी रहती हैं।

तात्पर्य

भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति तीन अवस्थाओं में प्रकट होती है—अन्तरंगा अर्थात् आध्यात्मिक, तटस्था अर्थात् जीव तथा बहिरंगा अर्थात् मायाशक्ति। हमें यह समझना चाहिए कि इन तीनों अवस्थाओं में सत् (शाश्वतता), चित् (ज्ञान) तथा आनन्द की मूल आध्यात्मिक शक्तियाँ अछूती रहती हैं। जब आध्यात्मिक आनन्द तथा ज्ञान की शक्तियाँ एकसाथ बद्धजीवों को प्रदान की जाती हैं, तब वे बहिरंगा शक्ति, माया के पाश से छूट सकते हैं, जो जीव के आध्यात्मिक स्वभाव को आच्छादित किये रहती है। मुक्त होकर जीव कृष्णभावना को प्राप्त होता है और प्रेम तथा स्नेह के साथ भक्ति में लग जाता है।

षड्-विध ऐश्वर्य—प्रभुर चिच्छक्ति-विलास ।
हेन शक्ति नाहि मान,—परम साहस ॥ १६१ ॥

षड्-विध ऐश्वर्य्य—प्रभुर चिच्छक्ति-विलास ।
हेन शक्ति नाहि मान,—परम साहस ॥ १६१ ॥

षट्-विध—छह प्रकार के; **ऐश्वर्य्य**—ऐश्वर्य; **प्रभुर**—भगवान् के; **चित्-शक्ति-विलास**—चित् शक्ति विलास, आध्यात्मिक शक्ति का विलास; **हेन शक्ति**—ऐसी उत्कृष्ट शक्तियाँ; **नाहि**—नहीं; **मान**—आप मानते हो; **परम साहस**—परम साहस।

अनुवाद

"भगवान् अपनी आध्यात्मिक शक्ति में छह प्रकार के ऐश्वर्यों का भोग करते हैं। आप इस आध्यात्मिक शक्ति को स्वीकार नहीं करते। यह आपकी भारी धृष्टता के कारण है।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् छह ऐश्वर्यों से युक्त हैं। ये सारी शक्तियाँ दिव्य धरातल पर हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को निराकार और शक्तिरहित समझना वैदिक सिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध है।

'मायाधीश' 'माया-वश'—ঈশ্বরে-জীবে ভেদ ।
হেন-জীবে ঈশ্বর-সহ কহ ত' অভেদ ॥ ১৬২ ॥
'मायाधीश' 'माया-वश'—ईश्वरे-जीवे भेद ।
हेन-जीवे ईश्वर-सह कह त' अभेद ॥ १६२ ॥

माया-अधीश—शक्ति के स्वामी; **माया-वश**—माया के प्रभाव में; **ईश्वरे**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में; **जीवे**—जीवों में; **भेद**—भेद, अन्तर; **हेन-जीवे**—ऐसे जीव; **ईश्वर-सह**—ईश्वर सहित; **कह**—आप कहते हैं; **त'**—अवश्य; **अभेद**—एक समान।

अनुवाद

"भगवान् शक्तियों के अधीश्वर हैं और जीव उनका दास है। भगवान् तथा जीव में यही अन्तर है। किन्तु आप यह कह रहे हैं कि भगवान् तथा जीव एक ही हैं।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वभाव से सभी शक्तियों के स्वामी हैं। जीव सूक्ष्म होने के कारण स्वभाव से ही सदैव भगवान् की शक्तियों के वश में रहते हैं। *मुण्डक उपनिषद्* (३.१.१-२) के अनुसार :

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो-
ऽनीषया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश-
मस्य महिमानमेति वीत-शोकः॥

मुण्डक उपनिषद् भगवान् तथा जीव में पूर्ण रूप से अन्तर करती है। जीव कर्मों का फल भोगता है, जबकि भगवान् ऐसे कर्म के साक्षी मात्र होते हैं और फल प्रदान करते हैं। जीव अपनी इच्छानुसार परमात्मा के निर्देशन में एक देह से दूसरी में और एक ग्रह से दूसरे में भ्रमण करता रहता है। किन्तु जब भगवत्कृपा से जीव सचेत होता है, तब उसे भक्ति प्राप्त होती है। इस तरह वह माया के पाश से बच जाता है। ऐसे अवसर पर वह अपने शाश्वत मित्र, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के देख सकता है और सारे शोक तथा लालसा से मुक्त हो सकता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१८.५४) में की गई है, जहाँ भगवान् कहते हैं, *ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति*—"इस प्रकार दिव्य पद पर स्थित मनुष्य को तुरन्त परम ब्रह्म की अनुभूति होती है और वह पूर्णरूपेण प्रसन्न हो जाता है। वह न कभी शोक करता है न किसी वस्तु की इच्छा करता है।" इस तरह यह निश्चित रूप से सिद्ध होता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् समस्त शक्तियों के स्वामी हैं और जीव सदैव इन शक्तियों के अधीन होते हैं। यही *मायाधीश* तथा *मायावश* में अन्तर है।

গীতা-শাস্ত্রে জীব-রূপ 'শক্তি' করি' মানে ।
হেন জীবে 'ভেদ' কর ঈশ্বরের সনে ॥ ১৬৩ ॥
गीता-शास्त्रे जीव-रूप 'शक्ति' करि' माने ।
हेन जीवे 'भेद' कर ईश्वरेर सने ॥ १६३ ॥

गीता-शास्त्रे— *भगवद्गीता* में; **जीव-रूप**—जीव का स्वरूप; **शक्ति**—शक्ति; **करि'**—

करके; **माने**—स्वीकार करता है; **हेन**—ऐसा; **जीवे**—जीव; **भेद**—भेद; **कर**—आप करते हो; **ईश्वरेर**—ईश्वर; **सने**—के साथ।

अनुवाद

"भगवद्गीता में जीव को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की तटस्था शक्ति बतलाया गया है। फिर भी आप कहते हो कि जीव भगवान् से पूर्णतया भिन्न है।

तात्पर्य

ब्रह्मसूत्र बतलाता है कि *शक्तिशक्तिमतोरभेदः* सिद्धान्त के अनुसार जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से एक साथ भिन्न है और अभिन्न भी है। गुणात्मक रूप में जीव तथा भगवान् एक हैं, किन्तु परिमाण में वे भिन्न हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन (*अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व*) के अनुसार जीव तथा परम भगवान् को एकसाथ अभिन्न तथा भिन्न माना जाता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ १६४॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ १६४॥

भूमिः—भूमि; **आपः**—जल; **अनलः**—अग्नि; **वायुः**—वायु; **खम्**—आकाश; **मनः**—मन; **बुद्धिः**—बुद्धि; **एव**—निश्चित रूप से; **च**—और; **अहङ्कारः**—मिथ्या अहंकार; **इति**—इस प्रकार; **इयम्**—यह; **मे**—मेरी; **भिन्ना**—भिन्न; **प्रकृतिः**—प्रकृति; **अष्टधा**—आठ प्रकार की।

अनुवाद

"'पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार—ये मेरी आठ पृथक् शक्तियाँ हैं।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीव-भूतां महा-बाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ १६५॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीव-भूतां महा-बाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ १६५॥

अपरा—निम्न कोटी की; **इयम्**—यह; **इतः**—इससे; **तु**—किन्तु; **अन्याम्**—अन्य; **प्रकृतिम्**—प्रकृति; **विद्धि**—जानो; **मे**—मेरी; **पराम्**—दिव्य; **जीव-भूताम्**—जीव के रूप में विद्यमान; **महा-बाहो**—हे महाबाहो; **यया**—जिससे; **इदम्**—यह; **धार्यते**—टिका है; **जगत्**—भौतिक जगत्।

अनुवाद

"'इन भौतिक निकृष्ट शक्तियों के अतिरिक्त मेरी एक अन्य शक्ति है, जो कि आध्यात्मिक शक्ति है और हे महाबाहु, यह जीव है। सारा भौतिक जगत् जीवों के द्वारा धारण किया जाता है।'

तात्पर्य

श्लोक १६४ तथा १६५ *भगवद्गीता* (७.४-५) से लिए गये हैं।

ঈশ্বরের শ্রী-বিগ্রহ সচ্চিদানন্দাকার ।
সে-বিগ্রহে কহ সত্ত্ব-গুণের বিকার ॥ ১৬৬॥

ঈশ্বরের শ্রী-বিগ্রহ সচ্চিদানন্দাকার ।
সে-বিগ্রহে কহ সত্ত্ব-গুণের বিকার ॥ ১৬৬॥

ঈশ্বরের—ईश्वर का; **শ্রী-বিগ্রহ**—श्री विग्रह; **সত্-চিত্-আনন্দ-আকার**—सत् चित् आनन्द रूपी; **সে-বিগ্রহে**—भगवान् के उस रूप के बारे; **কহ**—आप कहते हैं; **সত্ত্ব-গুণের**—भौतिक सत्त्व गुण; **বিকার**—विकार।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दिव्य स्वरूप शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द से परिपूर्ण है, किन्तु आप इसे भौतिक सत्त्वगुण की उपज बतला रहे हैं।

শ্রী-বিগ্রহ যে না মানে, সেই ত' পাষণ্ডী ।
অদৃশ্য অস্পৃশ্য, সেই হয় যম-দণ্ডী ॥ ১৬৭॥

শ্রী-বিগ্রহ যে না মানে, সেই ত' পাষণ্ডী ।
অদৃশ্য অস্পৃশ্য, সেই হয় যম-দণ্ডী ॥ ১৬৭॥

শ্রী-বিগ্রহ—भगवान् का रूप; **যে**—जो कोई; **না**—नहीं; **মানে**—मानता; **সেই**—वह;

त'—निस्सन्देह; **पाषण्डी**—नास्तिक; **अदृश्य**—देखने योग्य नहीं; **अस्पृश्य**—अछूत; **सेइ**—वह; **हय**—है; **यम-दण्डी**—यम द्वारा दण्डणीय।

अनुवाद

"जो व्यक्ति भगवान् के दिव्य रूप को स्वीकार नहीं करता, वह निश्चय ही पाषण्डी है। ऐसे व्यक्ति को न तो देखना चाहिए, न ही उसका स्पर्श करना चाहिए। निस्सन्देह, वह यमराज द्वारा दण्डनीय है।

तात्पर्य

वैदिक शिक्षाओं के अनुसार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का एक सनातन दिव्य रूप है, जो सदैव आनन्द तथा ज्ञान से युक्त है। निर्विशेषवादियों के अनुसार "भौतिक" का अर्थ है, हमारी भौतिक इन्द्रियों द्वारा अनुभव होने वाला रूप और "आध्यात्मिक" का अर्थ है, रूप-रहित। किन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि इस भौतिक प्रकृति के परे भी एक प्रकृति है, जो आध्यात्मिक है। जिस प्रकार इस भौतिक जगत् में भौतिक रूप मिलते हैं, उसी तरह आध्यात्मिक जगत् में आध्यात्मिक रूप होते हैं। इसकी पुष्टि समस्त वैदिक साहित्य द्वारा की जाती है। दिव्य जगत् के आध्यात्मिक रूपों का निराकार होने की नकारात्मक धारणा से कोई सरोकार नहीं है। निष्कर्ष यह है कि जो व्यक्ति भगवान् के दिव्य रूप की पूजा करने के लिए तैयार नहीं होता, वह पाखण्डी है।

वास्तव में इस समय सारे धर्म भगवान् के दिव्य रूप की जानकारी के अभाव के कारण उनके दिव्य साकार रूप की पूजा को हतोत्साहित करते हैं। उच्च श्रेणी के भौतिकतावादी (मायावादी) भगवान् के पाँच विशिष्ट रूपों की कल्पना करते हैं, किन्तु जब वे इन काल्पनिक रूपों की पूजा की तुलना भक्ति से करने की चेष्टा करते हैं, तो वे तुरन्त अपराधी बन जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* (७.१५) में यह कहकर इसकी पुष्टि की है *न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।* पाखण्डवश वास्तविक ज्ञान से रहित होने के कारण मायावादी दार्शनिक न तो भगवान् के भक्तों द्वारा देखे जाने, न ही स्पर्श करने के योग्य रहते हैं, क्योंकि ये दार्शनिक पापियों के कर्मों के फल निर्धारित करने वाले देवता, यमराज द्वारा दण्डनीय हैं। ये मायावादी पाखण्डी अपने अभक्तिपूर्ण कार्यों के फलस्वरूप इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न योनियों में घूमते रहते हैं। ऐसे

जीव यमराज द्वारा दण्डनीय हैं। केवल सदैव भगवान् की भक्ति में लगे रहने वाले भक्तगण यमराज के कार्यक्षेत्र से परे हैं।

वेद ना मानिया बौद्ध हय त' नास्तिक ।
वेदाश्रय नास्तिक्य-वाद बौद्धके अधिक ॥ १६८ ॥

वेद—वैदिक साहित्य; **ना**—नहीं; **मानिया**—स्वीकार करके; **बौद्ध**—बौद्धजन; **हय**—हैं; **त'**—निस्सन्देह; **नास्तिक**—नास्तिक; **वेद-आश्रय**—वैदिक संस्कृति का आश्रय लेते हुए; **नास्तिक्य-वाद**—नास्तिकता; **बौद्धके**—बौद्ध से भी; **अधिक**—अधिक।

अनुवाद

"चूँकि बौद्धगण वेदों की सत्ता को नहीं मानते, अतएव वे नास्तिक माने जाते हैं। किन्तु जो लोग वैदिक शास्त्रों की शरण लेकर भी मायावादी दर्शन के अनुसार नास्तिकता का प्रचार करते हैं, वे बौद्धों से भी अधिक नास्तिक हैं।

तात्पर्य

यद्यपि बौद्धगण वैष्णव-दर्शन के सीधे विरोधी हैं, किन्तु यह बात साफ है कि शंकराचार्य के अनुयायी अधिक खतरनाक होते हैं, क्योंकि वे वेदों के प्रमाण को मानते हुए भी वैदिक आदेश के विरुद्ध कार्य करते हैं। *वेदाश्रय नास्तिक्यवाद* का अर्थ है, "वैदिक संस्कृति के आश्रय के अन्तर्गत नास्तिकवाद" और यह मायावादियों के अद्वैत दर्शन का सूचक है। भगवान् बुद्ध ने वैदिक साहित्य के प्रमाण का त्याग किया, अतएव उन्होंने वेदों में वर्णित अनुष्ठानों तथा यज्ञों का निषेध किया। उनका *निर्वाण*-दर्शन समस्त भौतिक कार्यकलापों को बन्द करने का सूचक है। भगवान् बुद्ध ने भौतिक जगत् के परे दिव्य रूपों तथा आध्यात्मिक कार्यों को मान्यता नहीं दी। उन्होंने इस भौतिक जगत् के परे एकमात्र शून्यवाद का वर्णन किया। मायावादी दार्शनिक वैदिक प्रमाण मानने का दिखावा तो करते हैं, किन्तु वैदिक अनुष्ठानों से कतराते हैं। वे दिव्य पद की कपोल कल्पना करके अपने आपको नारायण

या ईश्वर कहलवाते हैं। किन्तु ईश्वर का पद उनकी कल्पना से सर्वथा भिन्न है। ऐसे मायावादी दार्शनिक अपने आपको कर्मकाण्ड (सकाम कर्म तथा उनके फल) के प्रभाव से ऊपर समझते हैं। उनके लिए आध्यात्मिक जगत् और बौद्ध शून्यवाद एक हैं। निर्विशेषवाद तथा शून्यवाद में बहुत ही थोड़ा अन्तर है। शून्यवाद को तो सीधे समझा जा सकता है, किन्तु मायावादियों द्वारा बतलाया गया निर्विशेषवाद आसानी से समझ में नहीं आता। मायावादी दार्शनिक आध्यात्मिकता को स्वीकार करते हैं, किन्तु वे आध्यात्मिक जगत् तथा आध्यात्मिक जीवों के विषय में कुछ नहीं जानते। *श्रीमद्भागवतम्* (१०.२.३२) के अनुसार :

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन
स्त्वय्यस्तभावाद् अविशुद्ध बुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥

मायावादियों की बुद्धि शुद्ध नहीं होती; इसलिए वे आत्म-साक्षात्कार हेतु तपस्या करने के बावजूद भी निर्विशेष ब्रह्मज्योति में बने नहीं रह सकते। फलतः उनका इस भौतिक जगत् में पुनः पतन हो जाता है।

आध्यात्मिक जीवन के बारे में मायावादियों की धारणा इस भौतिक अस्तित्व के निषेध जैसी है। मायावादियों का मानना है कि आध्यात्मिक जीवन में कुछ भी सकारात्मक नहीं है। फलतः वे परम भगवान्, सच्चिदानन्द विग्रह की भक्ति या पूजा को समझ नहीं पाते। अर्चाविग्रह की भक्तिमयी पूजा को मायावादी दार्शनिक *प्रतिबिम्बवाद* मानते हैं, अर्थात् ऐसे रूप की पूजा, जो मिथ्या भौतिक रूप का प्रतिबिम्ब है। इस तरह मायावादी दार्शनिकों को भगवान् का दिव्य रूप अज्ञात रहता है, जो शाश्वत रूप से आनन्दमय तथा ज्ञान से पूर्ण होता है। यद्यपि *श्रीमद्भागवतम्* में "भगवान्" शब्द का स्पष्ट वर्णन है, किन्तु वे इसे समझ नहीं सकते। *ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते*—"परम सत्य को ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् कहा जाता है (*भागवत* १.२.११)। मायावादी केवल ब्रह्म को, या अधिक से अधिक परमात्मा को समझने की चेष्टा करते हैं; किन्तु वे भगवान् को नहीं समझ पाते। इसीलिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्

कृष्ण कहते हैं—*माययापहृत ज्ञानाः*। मायावादी दार्शनिकों के स्वभाव के कारण ही उनसे वास्तविक ज्ञान हर लिया जाता है। चूँकि उन्हें भगवान् की कृपा प्राप्त नहीं होती, अतः वे उनके दिव्य रूप द्वारा सदैव मोहग्रस्त रहेंगे। निर्विशेष दर्शन *ज्ञान, ज्ञेय* तथा *ज्ञाता*—ज्ञान की इन तीन अवस्थाओं को विनष्ट करता है। जब भी कोई ज्ञान की बात कहता है, तो उसी के साथ उसे जानने वाला (ज्ञाता) होना चाहिए और साथ ही ज्ञान और ज्ञान का लक्ष्य (ज्ञेय) होना चाहिए। मायावादी दर्शन इन तीनों को मिला देता है, इसलिए मायावादी यह नहीं समझ पाते कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आध्यात्मिक शक्तियाँ किस तरह कार्य करती हैं। अल्पज्ञान के कारण वे आध्यात्मिक जगत् में ज्ञान, ज्ञाता तथा ज्ञेय के अन्तर को नहीं समझ पाते। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु मायावादी दार्शनिकों को बौद्धों से अधिक खतरनाक मानते हैं।

जीवेर निस्तार लागि' सूत्र कैल व्यास ।
मायावादि-भाष्य शुनिले हय सर्वनाश ॥१६९॥

जीवेर निस्तार लागि' सूत्र कैल व्यास ।
मायावादि-भाष्य शुनिले हय सर्वनाश ॥ १६९ ॥

जीवेर—जीवों के; **निस्तार**—उद्धार; **लागि'**—के लिए; **सूत्र**—*वेदान्त-सूत्र;* **कैल**—किया; **व्यास**—श्रील व्यासदेव ने; **मायावादि**—निर्विशेषवादियों का; **भाष्य**—भाष्य; **शुनिले**—सुनने पर; **हय**—होता है; **सर्वनाश**—सर्वनाश।

अनुवाद

"श्रील व्यासदेव ने बद्धजीवों के उद्धार हेतु वेदान्त-दर्शन प्रस्तुत किया, किन्तु यदि कोई व्यक्ति शंकराचार्य का भाष्य सुनता है, तो उसका सर्वनाश हो जाता है।

तात्पर्य

वस्तुतः *वेदान्त-सूत्र* में भगवान् की भक्ति का वर्णन हुआ है, किन्तु मायावादी दार्शनिकों ने अर्थात् शंकराचार्य के अनुयायियों ने *शारीरक भाष्य* नाम से टीका प्रस्तुत की है, जिसमें भगवान् के दिव्य रूप को नकारा गया है। मायावादी दार्शनिक सोचते हैं कि जीव परमात्मा अर्थात् ब्रह्म से अभिन्न है।

वेदान्त-सूत्र पर लिखी गई उनकी टीकाएँ भक्ति के सिद्धान्त से पूर्णतया विरोधी हैं। इसलिए चैतन्य महाप्रभु हमें सचेत करते हैं कि हम इन टीकाओं से बचें। यदि कोई शंकरवादी *शारीरक भाष्य* सुनता है, तो निस्सन्देह वह वास्तविक ज्ञान से वंचित हो जायेगा।

महत्त्वाकांक्षी मायावादी दार्शनिक भगवान् के अस्तित्व में समा जाना चाहते हैं, जिसे *सायुज्य मुक्ति* के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु ऐसी मुक्ति का अर्थ है अपने व्यक्तिगत अस्तित्व का निषेध करना। दूसरे शब्दों में, यह एक प्रकार की आध्यात्मिक आत्महत्या है। यह *भक्तियोग* के दर्शन के सर्वथा विपरीत है। भक्तियोग तो प्रत्येक बद्धजीव को अमरत्व प्रदान करता है। मायावादी दर्शन का पालन करने वाला व्यक्ति इस भौतिक शरीर को त्यागने के बाद अमर बनने के सुअवसर से वंचित हो जाता है। अमरत्व व्यक्तिगत जीव के लिए प्राप्त होने वाला सर्वोच्च पूर्णता का पद है।

'परिणाम-वाद'—व्यास-सूत्रेर सम्मत ।
अचिन्त्य-शक्ति ईश्वर जगद्रूपे परिणत ॥ १७० ॥

'परिणाम-वाद'—व्यास-सूत्रेर सम्मत ।
अचिन्त्य-शक्ति ईश्वर जगद् रूपे परिणत ॥ १७० ॥

परिणाम-वाद—रूपांतर का सिद्धान्त; **व्यास-सूत्रेर**—वेदान्त सूत्र का; **सम्मत**—आशय; **अचिन्त्य-शक्ति**—अचिन्त्य शक्ति; **ईश्वर**—ईश्वर; **जगत्-रूपे**—जगत् के रूप में; **परिणत**—परिवर्तित।

अनुवाद

"वेदान्त-सूत्र का लक्ष्य यह स्थापित करना है कि विराट जगत् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्ति के रूपान्तर से उत्पन्न हुआ है।

तात्पर्य

परिणामवाद की अधिक व्याख्या के लिए आदिलीला (७.१२१-१३३) देखें।

मणि यैछे अविकृते प्रसवे हेम-भार ।
जगद्रूप हय ईश्वर, तबु अविकार ॥ १७१ ॥

मणि ग्रैछे अविकृते प्रसबे हेम-भार ।
जगद् रूप हय ईश्वर, तबु अविकार ॥ १७१ ॥

मणि—पारस पत्थर; **ग्रैछे**—जैसे; **अविकृते**—बिना किसी विकार के; **प्रसबे**—उत्पन्न करता है; **हेम-भार**—सोने के ढेर; **जगत्-रूप**—जगत् के रूप में; **हय**—हो जाते हैं; **ईश्वर**—ईश्वर; **तबु**—फिर भी; **अविकार**—बिना विकार के रहते हैं।

अनुवाद

"पारस-पत्थर लोहे का स्पर्श करके ढेरों सोना उत्पन्न करता है, किन्तु स्वयं अपरिवर्तित बना रहता है। इसी तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा अपने आपको विराट जगत् के रूप में प्रकट करते हैं, किन्तु उनका सनातन दिव्य स्वरूप अपरिवर्तित रहता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के भाष्य के अनुसार *वेदान्त-सूत्र* के *जन्माद्यस्य* श्लोक का उद्देश्य यह स्थापित करना है कि विराट जगत् की अभिव्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्तियों के रूपान्तर के कारण है। भगवान् असंख्य शाश्वत शक्तियों के स्वामी हैं और ये शक्तियाँ असीम हैं। ये शक्तियाँ कभी प्रकट होती हैं और कभी नहीं होतीं। किन्तु प्रत्येक दशा में सारी शक्तियाँ उन्हीं के अधीन रहती हैं, इसीलिए वे आदि शक्तिमान हैं अर्थात् समस्त शक्तियों के स्रोत हैं। बद्धावस्था में साधारण बुद्धि यह सोच ही नहीं पाती कि इतनी अचिन्त्य शक्तियाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में कैसे स्थित रहती हैं और वे किस प्रकार असंख्य रूपों में भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के स्वामी बने रहते हैं। किस तरह वे व्यक्त तथा अव्यक्त शक्तियों के स्वामी हैं और किस तरह विरोधी शक्तियाँ उनमें वास कर सकती हैं। जब तक जीव इस भौतिक जगत् में मोहावस्था में रहता है, वह भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों के कार्यकलापों को नहीं समझ सकता। इस तरह भगवान् की शक्तियाँ वास्तविक होते हुए भी साधारण मस्तिष्क की समझ से परे रहती हैं।

जब नास्तिक दार्शनिक या मायावादी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों को न समझ पाने के कारण निर्विशेष शून्य की कल्पना करते हैं, तब उनकी यह कल्पना भौतिकतावादी चिन्तन का एक प्रतिरूप ही होती है। इस

भौतिक जगत् में कुछ भी अचिन्त्य नहीं है। बहुत बुद्धिमान दार्शनिक तथा वैज्ञानिक भौतिक शक्ति को तो वश में कर सकते हैं, किन्तु आध्यात्मिक शक्ति को न समझ पाने के कारण वे केवल निष्क्रियता अवस्था की—यथा निर्विशेष ब्रह्म की ही कल्पना कर सकते हैं। यह तो भौतिक जीवन का केवल नकारात्मक पक्ष है। ऐसे अपूर्ण ज्ञान से मायावादी दार्शनिक इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विराट जगत् सर्वोपरि का रूपान्तर है। अत: वे सर्वोपरि के मोहग्रस्त होने (*विवर्तवाद* सिद्धान्त) को स्वीकार करने के लिए बाध्य होते हैं। किन्तु यदि हम भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों को स्वीकार करें, तो यह समझ सकेंगे कि किस तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भौतिक प्रकृति के तीन गुणों से दूषित हुए बिना या उनका स्पर्श किये बिना इस भौतिक जगत् में प्रकट हो सकते हैं।

शास्त्रों से विदित होता है कि पारस-पत्थर नामक एक मणि होता है, जो लोहे को सोने में बदल सकता है। यह मणि लोहे को अनेक बार सोने में बदलने पर भी अपनी मूल स्थिति में रहती है। यदि ऐसी भौतिक मणि प्रचुर सोना उत्पन्न करने पर भी अपनी अचिन्त्य शक्ति बनाये रख सकती है, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् निश्चय ही विराट जगत् की सृष्टि करने के बाद भी अपना मूल सच्चिदानन्द स्वरूप बनाये रख सकते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.१०) में पुष्टि हुई है, वे अपनी विभिन्न शक्तियों के द्वारा ही कार्य करते हैं। *मयाध्यक्षेण प्रकृति:*—कृष्ण भौतिक शक्ति को संचालित करते हैं और वह शक्ति इस भौतिक जगत् में कार्य करती है। इसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* (५.४४) में भी हुई है :

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा
गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि॥

दुर्गा शक्ति (भौतिक शक्ति) पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के निर्देशन में कार्य करती है और वह ब्रह्माण्ड की सृष्टि, उसके भरण तथा संहार का कार्य करती है। कृष्ण पृष्ठभूमि से निर्देशन करते हैं। निष्कर्ष यह है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी शक्ति का निर्देशन करते हुए भी, जिससे विविध विराट जगत् इतनी कुशलता से कार्य करता है, यथारूप रहते हैं।

व्यास—भ्रान्त बलि' सेइ सूत्रे दोष दिया ।
'विवर्त-वाद' स्थापियाछे कल्पना करिया ॥ १७२॥

व्यास—भ्रान्त बलि' सेइ सूत्रे दोष दिया ।
'विवर्त-वाद' स्थापियाछे कल्पना करिया ॥ १७२॥

व्यास—श्रील व्यासदेव; **भ्रान्त**—गलत; **बलि'**—कहकर; **सेइ**—वह; **सूत्रे**—*वेदान्त-सूत्र* में; **दोष**—दोष; **दिया**—देकर; **विवर्त-वाद**—माया का सिद्धान्त; **स्थापियाछे**—स्थापित किया है; **कल्पना**—कल्पना; **करिया**—करके।

अनुवाद

"शंकराचार्य के सिद्धान्त के अनुसार परम सत्य रूपान्तरित होता है। इस सिद्धान्त के बल पर मायावादी दार्शनिक श्रील वेदव्यास में दोष दिखलाकर उन्हें नीचा दिखाते हैं। इस तरह वे वेदान्त-सूत्र में त्रुटि निकालते हैं और विवर्तवाद की स्थापना करने हेतु वे इस विषय में अपना अर्थ लगाते हैं।

तात्पर्य

ब्रह्मसूत्र का पहला श्लोक है—*अथातो ब्रह्मजिज्ञासा*—"अब हमें परम सत्य के विषय में जिज्ञासा करनी चाहिए।" दूसरे ही श्लोक में इसका उत्तर है—*जन्माद्यस्य यत:*—"परम सत्य ही सबके मूल स्रोत हैं।" इस श्लोक—*जन्माद्यस्य यत:* का यह अर्थ नहीं है कि आदि पुरुष रूपान्तरित हो गये हैं; प्रत्युत यह स्पष्ट इंगित करता है कि वे अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा इस विराट् जगत् को उत्पन्न करते हैं। *भगवद्गीता* (१०.८) में इसकी व्याख्या स्पष्ट रूप से की गई है, जहाँ कृष्ण कहते हैं—*मत्त: सर्वं प्रवर्तते*—"मुझ से ही सब उद्भूत होता है।" *तैत्तिरीय उपनिषद्* (३.१.१) से भी इसकी पुष्टि होती है—*यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।*"परम सत्य वे हैं, जिनसे प्रत्येक वस्तु उद्भूत होती है।" इसी प्रकार *मुण्डक उपनिषद्* (१.१.७) में कहा गया है—*यथोर्णनाभि: सृजते गृह्णते च*—"भगवान् इस भौतिक जगत् का उसी प्रकार

सृजन तथा संहार करते है, जिस प्रकार एक मकड़ी जाल बुनती है और बाद में उसे अपने में समेट लेती है।" ये सारे सूत्र भगवान् की शक्ति के रूपान्तर के सूचक हैं। ऐसा नहीं है कि स्वयं भगवान् में प्रत्यक्ष रूपान्तर होता है, जो *परिणामवाद* कहलाता है। किन्तु श्रील व्यासदेव को आलोचना से बचाने के लिए शंकराचार्य ने छद्म भद्रपुरुष बनकर *विवर्तवाद* प्रस्तुत किया। शंकराचार्य ने *परिणामवाद* का यह अर्थ गढ़ा और शब्दजाल के द्वारा परिणामवाद को विवर्तवाद के रूप में स्थापित करने का भरसक प्रयत्न किया ।

জীবের দেহে আত্ম-বুদ্ধি——সেই মিথ্যা হয় ।
জগৎ যে মিথ্যা নহে, নশ্বর-মাত্র হয় ॥১৭৩॥

जीवेर देहे आत्म-बुद्धि——सेइ मिथ्या हय ।
जगत् ये मिथ्या नहे, नश्वर-मात्र हय ॥ १७३ ॥

जीवेर—जीवों के; **देहे**—शरीर में; **आत्म-बुद्धि**—आत्म बुद्धि; **सेइ**—वह; **मिथ्या**—मिथ्या; **हय**—है; **जगत्**—जगत्; **ये**—वह; **मिथ्या**—मिथ्या; **नहे**—नहीं; **नश्वर-मात्र**—मात्र अस्थायी; **हय**—है।

अनुवाद

"विवर्तवाद तभी प्रभावी होता है, जब जीव अपनी पहचान शरीर के रूप में करे। किन्तु जहाँ तक विराट जगत् का सम्बन्ध है, इसे मिथ्या नहीं कहा जा सकता। हाँ, यह नश्वर अवश्य है।

तात्पर्य

जीव कृष्ण का सनातन सेवक है। भगवान् का अंश होने के कारण वह स्वाभाविक रूप से शुद्ध है, किन्तु भौतिक शक्ति के सम्पर्क में आकर वह अपनी पहचान स्थूल या सूक्ष्म भौतिक शरीर के रूप में करता है। ऐसी पहचान निश्चय ही मिथ्या है और विवर्तवाद का आधार बनती है। जीव नित्य है, उस पर काल का प्रभाव नहीं हो सकता, किन्तु उसके स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों पर काल का प्रभाव होता है। विराट जगत् कभी भी मिथ्या नहीं है, किन्तु काल के प्रभाव के कारण यह परिवर्तनशील है। इस जगत् को अपनी इन्द्रियतृप्ति का साधन स्वीकार करना निश्चित रूप से मोह (भ्रम) है। यह भौतिक जगत्

भगवान् की भौतिक शक्ति की अभिव्यक्ति है। *भगवद्गीता* (७.४) में कृष्ण ने इसकी व्याख्या की है :

भूमिरापोऽनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और मिथ्या अहंकार—ये सभी आठ मेरी भिन्न भौतिक शक्तियाँ हैं।"

भौतिक जगत् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अपरा (निकृष्ट) शक्ति है, किन्तु यह कहना सही नहीं है कि परम भगवान् इस भौतिक जगत् में रूपान्तरित हो गये हैं। मायावादी दार्शनिकों ने, वास्तविक ज्ञान से रहित होने के कारण विवर्तवाद एवं परिणामवाद के सिद्धान्त को वाक्जाल से अस्तव्यस्त कर दिया है। विवर्तवाद उस व्यक्ति पर प्रभावी होता है, जो अपनी पहचान शरीर के रूप में करता है। जीव परम भगवान् की उच्चतर शक्ति है, भौतिक जगत् उनकी निकृष्ट शक्ति है, किन्तु दोनों *प्रकृति* (शक्ति) ही हैं। यद्यपि सारी शक्तियाँ भगवान् से अभिन्न होते हुए भी भिन्न हैं, अत: भगवान् अपनी विभिन्न शक्तियों के रूपान्तरित होने पर भी कभी भी अपना व्यक्तिगत साकार स्वरूप नहीं त्यागते।

'প্রণব' যে মহা-বাক্য——ঈশ্বরের মূর্তি ।
প্রণব হৈতে সর্ব-বেদ, জগতুৎপত্তি ॥১৭৪॥

'प्रणव' ये महा-वाक्य——ईश्वरेर मूर्ति ।
प्रणव हैते सर्व-वेद, जगत् उत्पत्ति ॥ १७४ ॥

प्रणव—ॐकार; **ये**—वह जो; **महा-वाक्य**—दिव्य शब्द; **ईश्वरेर**—भगवान् का; **मूर्ति**—रूप; **प्रणव**—ॐकार; **हैते**—से; **सर्व-वेद**—सारा वैदिक साहित्य; **जगत्**—भौतिक जगत् की; **उत्पत्ति**—उत्पत्ति।

अनुवाद

"ॐकार की दिव्य ध्वनि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का शब्द-रूप है। सारा वैदिक ज्ञान तथा यह विराट जगत् भगवान् के इस शब्द-रूप से उत्पन्न हुए हैं।

तात्पर्य

ॐकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का शब्द-स्वरूप है। उनके पवित्र नाम का यह रूप दिव्य ध्वनि के रूप में (*महावाक्य*) स्वीकार किया जाता है, जिसके कारण यह नश्वर जगत् उत्पन्न हुआ है। यदि मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शब्द-प्रतिनिधि (*ॐकार*) की शरण ग्रहण करता है, तो वह अपनी वैधानिक स्थिति का साक्षात्कार कर सकता है और बद्ध जीवन में रहते हुए भी भक्ति में लग सकता है।

'तत्त्वमसि'—जीव-हेतु प्रादेशिक वाक्य ।
प्रणव ना मानि' तारे कहे महा-वाक्य ॥ १७५॥

'तत्त्वमसि'—जीव-हेतु प्रादेशिक वाक्य ।
प्रणव ना मानि' तारे कहे महा-वाक्य ॥ १७५॥

तत् त्वम् असि—तुम वही हो; **जीव-हेतु**—बद्धजीव के प्रकाश हेतु; **प्रादेशिक**—सहायक; **वाक्य**—शब्द; **प्रणव**—ॐकार अवतार; **ना**—नहीं; **मानि'**—मानकर; **तारे**—वह; **कहे**—कहता है; **महा-वाक्य**—दिव्य वाणी।

अनुवाद

***"तत्त्वमसि"* ("तुम वही हो") गौण ध्वनि (प्रादेशिक वाक्य) जीव की जानकारी के लिए है, किन्तु मुख्य ध्वनि ॐकार है। शंकराचार्य ने ॐकार को महत्त्व न देकर *तत्त्वमसि* ध्वनि पर बल दिया है।"**

तात्पर्य

भगवान् के पवित्र नाम के दिव्य ध्वनि-अवतार *प्रणव* को वैदिक साहित्य के मुख्य सिद्धान्त के रूप में न स्वीकार करने वाला व्यक्ति *तत्त्वमसि* को मूल ध्वनि मानता है। शंकराचार्य ने शब्दाडम्बर द्वारा जीव तथा प्रकट जगत् के साथ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का भ्रामक सम्बन्ध उत्पन्न करने का प्रयास किया। *तत्त्वमसि* जीव के लिए चेतावनी है कि वह शरीर को आत्मा मानने की भूल न करे। अतएव *तत्त्वमसि* विशेष रूप से बद्ध आत्मा के लिए है। ॐकार या हरे कृष्ण मन्त्र का जप मुक्त आत्मा के लिए है। श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है—*अयि मुक्तकुलैरुपास्यमानम्।* (नामाष्टक १) भगवान् के पवित्र नाम का

कीर्तन मुक्त आत्मा करते हैं। इसी प्रकार परीक्षित महाराज कहते हैं—*निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात्* (*भागवत* १०.१.४) भगवान के पवित्र नाम का कीर्तन वे ही कर सकते हैं, जो भौतिक इच्छाओं की पूर्ति पूर्णतया कर चुके हैं या जो दिव्य पद को प्राप्त हैं और भौतिक इच्छा से रहित हैं। भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन वही कर सकता है, जो भौतिक कल्मष से पूर्णतया मुक्त है। (*अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम्*)। शंकराचार्य ने गौण ध्वनि (*तत्त्वमसि*) को सबसे महत्त्वपूर्ण वैदिक मन्त्र मान करके मुख्य वैदिक मन्त्र (*ॐकार*) के महत्त्व को घटाया है।

एई-मते कल्पित भाष्ये शत दोष दिल ।
भट्टाचार्य पूर्व-पक्ष अपार करिल ॥ १७६॥

एइ-मते कल्पित भाष्ये शत दोष दिल ।
भट्टाचार्य्य पूर्व-पक्ष अपार करिल ॥ १७६॥

एइ-मते—इस प्रकार; **कल्पित**—मनगढंत; **भाष्ये**—भाष्य में; **शत**—सैकड़ों; **दोष**—दोष; **दिल**—दिखाये; **भट्टाचार्य्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **पूर्व-पक्ष**—विरोधी तत्त्व (पक्ष); **अपार**—असीम; **करिल**—प्रस्तुत किये।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने शंकराचार्य के शारीरक भाष्य को काल्पनिक कहकर आलोचना की और उसमें सैकड़ों दोष दिखलाये, किन्तु सार्वभौम भट्टाचार्य ने शंकराचार्य का पक्ष लेते हुए अनेक तर्क प्रस्तुत किये।

वितण्डा, छल, निग्रहादि अनेक उठाइल ।
सब खण्डि' प्रभु निज-मत से स्थापिल ॥ १७७॥

वितण्डा, छल, निग्रहादि अनेक उठाइल ।
सब खण्डि' प्रभु निज-मत से स्थापिल ॥ १७७॥

वितण्डा—प्रतिवाद; **छल**—कल्पित व्याख्या (दर्शन); **निग्रह-आदि**—विरोधी दल को दबाना; **अनेक**—अनेक; **उठाइल**—उठाए; **सब**—सब; **खण्डि'**—खण्डन करके; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **निज-मत**—अपना मत; **से**—वह; **स्थापिल**—स्थापित किया।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने छद्म तर्क समेत विविध प्रकार के मिथ्या तर्क प्रस्तुत किये और अपने प्रतिपक्षी को हराने के लिए अनेक प्रकार से प्रयास किये। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन सारे तर्कों को खण्डित किये और अपना मत स्थापित किया।

तात्पर्य

वितण्डा शब्द का अर्थ यह है कि शास्त्रार्थ करने वाला व्यक्ति अपनी बात को सिद्ध करने के बदले दूसरे व्यक्ति के तर्कों को काटने का प्रयास करता है। जब कोई व्यक्ति मुख्य बात पर ध्यान न देकर गलत अर्थ लगाकर ध्यान बटाना चाहता है, तो वह *छल* करता है। *निग्रह* शब्द का अर्थ भी विपक्षी के तर्कों का खण्डन करने का प्रयास है।

ভগবান্—'সম্বন্ধ', ভক্তি—'অভিধেয়' হয় ।
প্রেমা—'প্রয়োজন', বেদে তিন-বস্তু কয় ॥১৭৮॥

भगवान्—'सम्बन्ध', भक्ति—'अभिधेय' हय ।
प्रेमा—'प्रयोजन', वेदे तिन-वस्तु कय ॥ १७८ ॥

भगवान्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **सम्बन्ध**—सम्बन्ध; **भक्ति**—भक्ति; **अभिधेय**—भक्तिमय सेवा; **हय**—है; **प्रेमा**—भगवत्प्रेम; **प्रयोजन**—जीवन का चरम लक्ष्य; **वेदे**—वेद; **तिन-वस्तु**—तीन विषय; **कय**—वर्णन करते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "सभी सम्बन्धों के केन्द्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, उनकी भक्ति करना (अभिधेय) मनुष्य का वास्तविक कर्म है और भगवत्प्रेम की प्राप्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य (प्रयोजन) है। वैदिक साहित्य में इन तीनों विषयों का वर्णन हुआ है।

तात्पर्य

भगवद्गीता (१५.१५) से इस कथन की पुष्टि होती है—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः।* वेदों का अध्ययन करने का वास्तविक प्रयोजन यह जानना है कि भगवद्भक्त किस तरह बना जाये। स्वयं भगवान् का उपदेश है—*मन्मना भव*

मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु (*भगवद्गीता* ९.३४)। अतएव वेदों का अध्ययन करने के बाद मनुष्य को भगवान् के विषय में सदैव चिन्तन करते हुए (*मन्मना*), उनका भक्त बनकर, उनकी पूजा करके और उन्हें सदैव नमस्कार करते हुए भक्ति करनी चाहिए। इसे *विष्णु-आराधना* कहते हैं और यह सभी मनुष्यों का सर्वोपरि कर्तव्य है। *वर्णाश्रम धर्म* प्रणाली समाज को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभक्त करती है। वर्णाश्रम धर्म में इसका उचित प्रकार से पालन किया जाता है। वैदिक सभ्यता की यही पूर्ण योजना है। किन्तु इस युग में इस प्रणाली की स्थापना कर पाना अत्यन्त कठिन है, इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु परामर्श देते हैं कि हम वर्णाश्रम धर्म की वैदिक प्रणाली की चिन्ता न करें। प्रत्युत हमें सीधे हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन और शुद्ध भक्तों से परम पुरुष भगवान् के विषय में श्रवण करना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसी विधि की संस्तुति की है और वेदों का अध्ययन करने का यही प्रयोजन है।

আর যে যে-কিছু কহে, সকল-ই কল্পনা ।
স্বতঃ-প্রমাণ বেদ-বাক্যে কল্পেন লক্ষণা ॥১৭৯॥

आर य़े य़े-किछु कहे, सकल-इ कल्पना ।
स्वतः-प्रमाण वेद-वाक्ये कल्पेन लक्षणा ॥ १७९ ॥

आर—इसके अलावा; **य़े य़े**—जो कुछ; **किछु**—कुछ; **कहे**—कहता है; **सकल-इ**—सब; **कल्पना**—कल्पना; **स्वतः-प्रमाण**—स्वतः प्रमाण; **वेद-वाक्ये**—वेद की दृष्टि से; **कल्पेन**—वह कल्पना करता है; **लक्षणा**—मनोकल्पना।

अनुवाद

"यदि कोई व्यक्ति भिन्न तरीके से वैदिक साहित्य की विवेचना करने की चेष्टा करता है, तो वह मात्र कल्पना है। स्वतः प्रमाणरूप वेद वाक्य के विषय में अनुमान लगाने को कोरी कल्पना ही समझना चाहिए।

तात्पर्य

जब बद्धजीव शुद्ध हो जाता है, तब वह भक्त कहलाता है। भक्त का एकमात्र सम्बन्ध पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ रहता है और उसका एकमात्र

धर्म भगवान् को तुष्ट करने के लिए भक्ति करना है। यह सेवा भगवान् के प्रतिनिधि गुरु के माध्यम से की जाती है—*यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।* उचित रीति से भक्ति करने पर भक्त को जीवन की सर्वोच्च सिद्धि 'भगवत्प्रेम' प्राप्त होती है—*स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।* वेदों को समझने का चरम उद्देश्य भगवान् की भक्तिमय सेवा करने के पद तक ऊपर उठना है। किन्तु मायावादी दार्शनिक निर्विशेष ब्रह्म को सम्बन्ध का केन्द्रबिन्दु मानते हैं और जीव का कर्म (अभिधेय) ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान की प्राप्ति मानते हैं। वे ज्ञान का परिणाम भौतिक कर्म से विरक्ति मानते हैं तथा मुक्ति अथवा परम में समा जाने को जीवन का चरम लक्ष्य (प्रयोजन) मानते हैं। किन्तु यह सब बद्धजीव की कल्पना मात्र है। इससे मात्र भौतिक कार्यों का निषेध होता है। मनुष्य को सदा स्मरण रखना चाहिए कि सारा वैदिक साहित्य स्वत: प्रमाणित है। वैदिक श्लोकों का अर्थ लगाने की किसी को अनुमति नहीं है। यदि कोई ऐसा करता है, तो इसे उसकी कल्पना माना जायेगा, जिसका कोई महत्त्व नहीं है।

আচার্যের দোষ নাহি, ঈশ্বর-আজ্ঞা হৈল ।
অতএব কল্পনা করি' নাস্তিক-শাস্ত্র কৈল ॥১৮০॥

आचार्येर दोष नाहि, ईश्वर-आज्ञा हैल ।
अतएव कल्पना करि' नास्तिक-शास्त्र कैल ॥ १८० ॥

आचार्येर—शंकराचार्य का; **दोष**—दोष; **नाहि**—नहीं; **ईश्वर-आज्ञा**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आज्ञा; **हैल**—थी; **अतएव**—अतएव; **कल्पना**—कल्पना; **करि'**—करके; **नास्तिक**—नास्तिक; **शास्त्र**—शास्त्र; **कैल**—तैयार किया।

अनुवाद

"वास्तव में इसमें शंकराचार्य का कोई दोष नहीं है। उन्होंने केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेश का पालन किया है। उन्हें किसी न किसी प्रकार के अनुमान की कल्पना करनी थी, अतएव उन्होंने ऐसा वैदिक साहित्य प्रस्तुत किया, जो पूर्णतया नास्तिक है।

স্বাগমৈঃ কল্পিতৈস্ত্বং চ জনান্মদ্বিমুখান্কুরু ।
মাং চ গোপয় যেন স্যাৎসৃষ্টিরেষোত্তরোত্তরা ॥১৮১॥

स्वागमैः कल्पितैस्त्वं च जनान्मद्विमुखान्कुरु ।
मां च गोपय य्रेन स्यात्सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा ॥ १८१ ॥

स्व-आगमैः—अपनी खुद की व्याख्या द्वारा; **कल्पितैः**—कल्पित; **त्वम्**—आप; **च**—तथा; **जनान्**—सामान्य जनता; **मत्-विमुखान्**—मुझसे विमुख और सकाम कर्म और मनगढंत ज्ञान में आसक्त; **कुरु**—करो; **माम्**—मुझे, भगवान्; **च**—और; **गोपय**—छुपा लो; **य्रेन**—जिसको; **स्यात्**—हो जाए; **सृष्टिः**—भौतिक प्रगति; **एषा**—यह; **उत्तर-उत्तरा**—अधिकाधिक।

अनुवाद

"[शिवजी को सम्बोधित करते हुए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने कहा :] 'आप साधारण लोगों को वेदों की अपनी कल्पित व्याख्या द्वारा मुझसे विमुख कर दीजिए। आप मुझे इस प्रकार ढक दीजिए कि लोगों में ऐसा प्रचार हो कि वे भौतिक सभ्यता में प्रगति करने में अधिक रुचि लेने लगें, ताकि आध्यात्मिक ज्ञान से रहित जनसंख्या में वृद्धि हो।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *पद्म-पुराण* (उत्तर खण्ड ६२.३१) से लिया गया है।

মায়াবাদমসচ্ছাস্ত্রং প্রচ্ছন্নং বৌদ্ধমুচ্যতে ।
ময়ৈব বিহিতং দেবি কলৌ ব্রাহ্মণ-মূর্তিনা ॥১৮২॥

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते ।
मयैव विहितं देवि कलौ ब्राह्मण-मूर्तिना ॥ १८२ ॥

मायावादम्—मायावाद दर्शन; **असत्-शास्त्रम्**—झूठे शास्त्र; **प्रच्छन्नम्**—ढका हुआ; **बौद्धम्**—बौद्धवाद; **उच्यते**—कहा जाता है; **मया**—मेरे द्वारा; **एव**—मात्र; **विहितम्**—सिखाना; **देवि**—हे भौतिक जगत् की देवी; **कलौ**—कलियुग में; **ब्राह्मण-मूर्तिना**—ब्राह्मण के रूप में।

अनुवाद

"[शिवजी ने भौतिक जगत् की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा को बतलाया :] 'कलियुग में मैं एक ब्राह्मण का रूप धारण करके मिथ्या शास्त्रों के माध्यम से वेदों की व्याख्या नास्तिक ढंग से करूँगा, जो बौद्ध दर्शन जैसी होगी।"

तात्पर्य

इस श्लोक में *ब्राह्मणमूर्तिना* शब्द मायावाद दर्शन के संस्थापक शंकराचार्य को इंगित करता है, जिनका जन्म दक्षिण भारत के मालाबार जिले में हुआ था। मायावाद दर्शन के अनुसार भगवान्, जीव तथा जगत् माया शक्ति के ही विकार हैं। इस नास्तिकवाद के समर्थन में मायावादी मिथ्या शास्त्रों का उद्धरण देते हैं, जिससे लोग दिव्य ज्ञान से वंचित हो जाते हैं और सकाम कर्म तथा मानसिक तर्कवितर्क में लिप्त होते हैं।

यह श्लोक *पद्म-पुराण* (उत्तर खण्ड २५.७) से उद्धृत किया गया है।

শুনি' ভট্টাচার্য হৈল পরম বিস্মিত ।
মুখে না নিঃসরে বাণী, হইলা স্তম্ভিত ॥১৮৩॥

शुनि' भट्टाचार्य्य हैल परम विस्मित ।
मुखे ना निःसरे वाणी, हइला स्तम्भित ॥ १८३ ॥

शुनि'—यह सुनकर; **भट्टाचार्य्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **हैल**—हो गये; **परम**—अत्यन्त; **विस्मित**—चकित; **मुखे**—मुख में; **ना**—नहीं; **निःसरे**—निकलती; **वाणी**—वाणी; **हइला**—हो गये; **स्तम्भित**—जड़।

अनुवाद

यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। वे स्तम्भित रह गये और कुछ भी न बोल सके।

প্রভু কহে,—ভট্টাচার্য, না কর বিস্ময় ।
ভগবানে ভক্তি—পরম-পুরুষার্থ হয় ॥১৮৪॥

प्रभु कहे,—भट्टाचार्य्य, ना कर विस्मय ।
भगवाने भक्ति—परम-पुरुषार्थ हय ॥ १८४ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **भट्टाचार्य्य**—प्रिय भट्टाचार्य; **ना**—न; **कर**—करो; **विस्मय**—विस्मय; **भगवाने**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की; **भक्ति**—भक्ति; **परम**—परम; **पुरुष-अर्थ**—मानव हित; **हय**—है।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे कहा, "आप विस्मित न हों। वास्तव में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति मानव-कर्म की सर्वोच्च सिद्धि है।

'আত্মারাম' পর্যন্ত করে ঈশ্বর ভজন ।
ঐছে অচিন্ত্য ভগবানের গুণ-গণ ॥১৮৫॥

'आत्माराम' पर्य्यन्त करे ईश्वर भजन ।
ऐछे अचिन्त्य भगवानेर गुण-गण ॥ १८५ ॥

आत्म-आराम—आत्म तुष्ट; **पर्य्यन्त**—तक; **करे**—करते हैं; **ईश्वर भजन**—ईश्वर की भक्ति; **ऐछे**—ऐसे; **अचिन्त्य**—अचिन्त्य; **भगवानेर**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; **गुण-गण**—दिव्य गुण।

अनुवाद

"भगवान् के दिव्य गुण ऐसे हैं कि आत्मतुष्ट (आत्माराम) सन्त भी भगवान् की भक्ति करते हैं। उनके गुण अचिन्त्य आध्यात्मिक शक्ति से पूर्ण हैं।

আত্মারামাশ্চ মুনয়ো নির্গ্রন্থা অপ্যুরুক্রমে ।
কুর্বন্ত্যহৈতুকীং ভক্তিমিত্থম্ভূত-গুণো হরিঃ ॥১৮৬॥

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत-गुणो हरिः ॥ १८६ ॥

आत्म-आरामाः—जो लोग भगवान् की दिव्य सेवा में स्थित होने में आनन्द का अनुभव करते हैं; **च**—भी; **मुनयः**—महान् साधु पुरुष जिन्होंने भौतिक इच्छाएँ तथा सकाम कर्म इत्यदि पूर्णरूपेण त्याग दिये हैं; **निर्ग्रन्थाः**—किसी भौतिक इच्छा में रुचि के बिना; **अपि**—निश्चित रूप से; **उरुक्रमे**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण में जिनकी लीलाएँ अद्भुत हैं; **कुर्वन्ति**—करते हैं; **अहैतुकीम्**—अहैतुकी अथवा भौतिक इच्छा के बिना; **भक्तिम्**—भक्ति; **इत्थम्-भूत**—इतनी अद्भुत कि आत्म तुष्ट लोगों का भी ध्यान आकर्षित हो जाता है; **गुणः**—दिव्य गुणों से युक्त; **हरिः**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"'जो आत्मतुष्ट (आत्माराम) हैं और बाह्य भौतिक इच्छाओं से विरक्त हैं, वे भी भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेममयी सेवा के प्रति आकृष्ट होते हैं,

क्योंकि कृष्ण के गुण दिव्य हैं और उनके कार्यकलाप अद्भुत हैं। भगवान् हरि इसीलिए कृष्ण कहलाते हैं, क्योंकि वे दिव्य आकर्षक लक्षणों से युक्त हैं।"

तात्पर्य

यह सुप्रसिद्ध *आत्माराम* श्लोक है (*भागवत* १.७.१०)

শুনি' ভট্টাচার্য কহে,—'শুন, মহাশয় ।
এই শ্লোকের অর্থ শুনিতে বাঞ্ছা হয়' ॥ ১৮৭ ॥

शुनि' भट्टाचार्य कहे,—'शुन, महाशय ।
एइ श्लोकेर अर्थ शुनिते वाञ्छा हय' ॥ १८७ ॥

शुनि'—यह सुनकर; **भट्टाचार्य कहे**—सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा; **शुन**—कृपया सुनो; **महा-आशय**—हे महाशय; **एइ श्लोकेर**—इस श्लोक का; **अर्थ**—अर्थ; **शुनिते**—सुनने की; **वाञ्छा**—इच्छा; **हय**—है।

अनुवाद

आत्माराम श्लोक सुनने के बाद सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से आग्रह किया, "हे महोदय, कृपया इस श्लोक की व्याख्या कीजिये। मैं इस पर आपकी व्याख्या सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।"

প্রভু কহে,—'তুমি কি অর্থ কর, তাহা আগে শুনি' ।
পাছে আমি করিব অর্থ, যেবা কিছু জানি' ॥ ১৮৮ ॥

प्रभु कहे,—'तुमि कि अर्थ कर, ताहा आगे शुनि' ।
पाछे आमि करिब अर्थ, ग्रेबा किछु जानि' ॥ १८८ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **तुमि**—आप; **कि**—क्या; **अर्थ**—अर्थ; **कर**—करते हो; **ताहा**—वह; **आगे**—सर्वप्रथम; **शुनि'**—सुनकर; **पाछे**—बाद में; **आमि**—मैं; **करिब**—करूँगा; **अर्थ**—अर्थ; **ग्रेबा**—जो; **किछु**—कुछ; **जानि**—मैं जानता हूँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "पहले मुझे अपनी व्याख्या सुनायें। तब मैं जो थोड़ा-बहुत जानता हूँ, बताने की चेष्टा करूँगा।"

শুনি' ভট্টাচার্য শ্লোক করিল ব্যাখ্যান ।
তর্ক-শাস্ত্র-মত উঠায় বিবিধ বিধান ॥ ১৮৯ ॥

शुनि' भट्टाचार्य श्लोक करिल व्याख्यान ।
तर्क-शास्त्र-मत उठाय विविध विधान ॥ १८९ ॥

शुनि'—यह सुनकर; **भट्टाचार्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **श्लोक**—श्लोक का; **करिल**—किया; **व्याख्यान**—व्याख्यान; **तर्क-शास्त्र**—तर्क शास्त्र; **मत**—के अनुसार; **उठाय**—निकालते हैं; **विविध**—विविध; **विधान**—प्रस्ताव।

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने आत्माराम श्लोक की व्याख्या करनी शुरू की और तर्कशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार उन्होंने अनेक प्रस्तावनाएँ प्रस्तुत कीं।

নব-বিধ অর্থ কৈল শাস্ত্র-মত লঞা ।
শুনি' প্রভু কহে কিছু ঈষৎ হাসিয়া ॥ ১৯০ ॥

नव-विध अर्थ कैल शास्त्र-मत लञा ।
शुनि' प्रभु कहे किछु ईषत् हासिया ॥ १९० ॥

नव-विध—नौ प्रकार के; **अर्थ**—अर्थ; **कैल**—किये; **शास्त्र-मत**—अधिकृत शास्त्रों के सिद्धान्त; **लञा**—लेकर; **शुनि'**—उसे सुनकर; **प्रभु**—भगवान् चैतन्य महाप्रभु; **कहे**—कहने लगे; **किछु**—कुछ; **ईषत्**—थोड़ा; **हासिया**—मुस्कुराकर।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने शास्त्रों के आधार पर आत्माराम श्लोक की व्याख्या नौ विविध प्रकारों से की। उनकी व्याख्या सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु मन्दहास करते हुए बोले।

तात्पर्य

नैमिषारण्य की एक सभा में शौनक ऋषि आदि महान् ऋषियों द्वारा आत्माराम श्लोक की व्याख्या की गई थी। इस सभा की अध्यक्षता करने वाले श्रील सूत गोस्वामी से इन ऋषियों ने प्रश्न किया कि परमहंस स्थिति में अवस्थित ऐसे श्रील शुकदेव गोस्वामी कृष्ण के गुणानुवाद के प्रति क्यों आकृष्ट

हुए? दूसरे शब्दों में, वे यह जानना चाह रहे थे कि श्रील शुकदेव गोस्वामी *श्रीमद्भागवत* के अध्ययन में क्यों लगे थे।

'भट्टाचार्य', जानि—तुमि साक्षाद्बृहस्पति ।
शास्त्र-व्याख्या करिते ऐछे कारो नाहि शक्ति ॥ १९१ ॥

'भट्टाचार्य', जानि—तुमि साक्षात्बृहस्पति ।
शास्त्र-व्याख्या करिते ऐछे कारो नाहि शक्ति ॥ १९१ ॥

भट्टाचार्य—प्रिय भट्टाचार्य; **जानि**—मैं जानता हूँ; **तुमि**—आप; **साक्षात्**—साक्षात्; **बृहस्पति**—देवताओं के विद्वान पुरोहित बृहस्पति; **शास्त्र-व्याख्या**—शास्त्रों की व्याख्या; **करिते**—करने; **ऐछे**—ऐसे; **कारो**—किसी अन्य की; **नाहि**—नहीं है; **शक्ति**—शक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे भट्टाचार्य, आप तो साक्षात् स्वर्गलोक के पुरोहित, बृहस्पति के समान हैं। निस्सन्देह इस जगत् में शास्त्रों की ऐसी व्याख्या करने की शक्ति अन्य किसी में नहीं है।

किन्तु तुमि अर्थ कैले पाण्डित्य-प्रतिभाय ।
इहा वइ श्लोकेर आछे आरो अभिप्राय ॥ १९२ ॥

किन्तु तुमि अर्थ कैले पाण्डित्य-प्रतिभाय ।
इहा वइ श्लोकेर आछे आरो अभिप्राय ॥ १९२ ॥

किन्तु—किन्तु; **तुमि**—आपने; **अर्थ**—अर्थ; **कैले**—बताये हैं; **पाण्डित्य**—पाण्डित्य; **प्रतिभाय**—प्रतिभा से; **इहा वइ**—इसके अतिरिक्त; **श्लोकेर**—श्लोक का; **आछे**—है; **आरो**—अन्य; **अभिप्राय**—भावार्थ।

अनुवाद

"हे प्रिय भट्टाचार्य, आपने अवश्य ही इस श्लोक की व्याख्या अपने विस्तृत पाण्डित्य के बल पर की है, किन्तु आप जान लीजिये कि इस पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या के अतिरिक्त भी इस श्लोक का अन्य तात्पर्य है।"

भट्टाचार्येर प्रार्थनाते प्रभु व्याख्या कैल ।
ताँर नव अर्थ-मध्ये एक ना छुडिल ॥ १९३ ॥

भट्टाचार्येर प्रार्थनाते प्रभु व्याख्या कैल ।
ताँर नव अर्थ-मध्ये एक ना छुडिल ॥ १९३ ॥

भट्टाचार्येर—सार्वभौम भट्टाचार्य की; **प्रार्थनाते**—प्रार्थना पर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **व्याख्या**—व्याख्या; **कैल**—की; **ताँर**—उनकी; **नव अर्थ**—नौ विभिन्न प्रकार की व्याख्या; **मध्ये**—में से; **एक**—एक को भी; **ना**—नहीं; **छुडिल**—छुआ।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के अनुरोध पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने भट्टाचार्य के नवों अर्थों को छुये बिना श्लोक की व्याख्या प्रारम्भ की।

आत्मारामाश्च-श्लोके 'एकादश' पद हय ।
पृथक्पृथक्कैल पदेर अर्थ निश्चय ॥ १९४ ॥

आत्मारामाश्च-श्लोके 'एकादश' पद हय ।
पृथक् पृथक् कैल पदेर अर्थ निश्चय ॥ १९४ ॥

आत्मारामाश् च—आत्माराम नामक; **श्लोके**—श्लोक में; **एकादश**—ग्यारह; **पद**—पद, शब्द; **हय**—हैं; **पृथक्-पृथक्**—अलग अलग; **कैल**—किया; **पदेर**—शब्दों का; **अर्थ**—अर्थ; **निश्चय**—निश्चित तौर पर।

अनुवाद

आत्माराम श्लोक में ग्यारह शब्द हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक-एक करके इनकी व्याख्या की।

तात्पर्य

आत्माराम श्लोक के शब्द हैं—आत्मारामाः, च, मुनयः, निर्ग्रन्थाः, अपि, उरुक्रमे, कुर्वन्ति, अहैतुकीम्, भक्तिम्, इत्थम्-भूतगुणः तथा हरिः।

तत्तत्पद-प्राधान्ये 'आत्माराम' मिलाञा ।
अष्टादश अर्थ कैल अभिप्राय लञा ॥ १९५ ॥

तत्तत्पद-प्राधान्ये 'आत्माराम' मिलाञा ।
अष्टादश अर्थ कैल अभिप्राय लञा ॥ १९५ ॥

तत्-तत्-पद—वे सभी शब्द; **प्राधान्ये**—मुख्यतः; **आत्माराम**—आत्माराम शब्द;

मिलाञा—मिलाकर; **अष्टादश**—अठारह; **अर्थ**—अर्थ; **कैल**—किये; **अभिप्राय**—अभिप्राय; **लञा**—लेकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रत्येक शब्द को लेकर उसके साथ "आत्माराम" शब्द को जोड़ा। इस तरह उन्होंने "आत्माराम" शब्द की व्याख्या अठारह भिन्न प्रकार से की।

ভগবান্, তাঁর শক্তি, তাঁর গুণ-গণ ।
অচিন্ত্য প্রভাব তিনের না যায় কথন ॥ ১৯৬॥

भगवान्, ताँर शक्ति, ताँर गुण-गण ।
अचिन्त्य प्रभाव तिनेर ना ग्राय कथन ॥ १९६॥

भगवान्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **ताँर शक्ति**—उनकी शक्तियाँ; **ताँर गुण-गण**—उनके दिव्य गुण; **अचिन्त्य**—अचिन्त्य; **प्रभाव**—प्रभाव; **तिनेर**—तीनों का; **ना**—नहीं; **ग्राय**—सम्भव; **कथन**—व्याख्या करना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, उनकी विभिन्न शक्तियाँ तथा उनके दिव्य गुण—ये सभी अचिन्त्य शक्ति से युक्त हैं। उनकी पूर्ण व्याख्या कर पाना सम्भव नहीं है।

অন্য যত সাধ্য-সাধন করি' আচ্ছাদন ।
এই তিনে হরে সিদ্ধ-সাধকের মন ॥ ১৯৭॥

अन्य यत साध्य-साधन करि' आच्छादन ।
एइ तिने हरे सिद्ध-साधकेर मन ॥ १९७॥

अन्य—अन्य; **ग्रत**—सभी; **साध्य-साधन**—लक्ष्य और दिव्य साधना; **करि'**—करके; **आच्छादन**—ढकना; **एइ तिने**—ये तीन; **हरे**—ले जाते हैं; **सिद्ध**—सफल; **साधकेर**—साधना के; **मन**—मन को।

अनुवाद

"ये तीनों आध्यात्मिक कार्यों में संलग्न सिद्ध जिज्ञासु को आकृष्ट कर लेते हैं तथा अन्य सभी प्रकार के आध्यात्मिक साधनों को आच्छादित कर लेते हैं।"

तात्पर्य

भक्तियोग के अतिरिक्त अन्य आध्यात्मिक कार्यों की तीन श्रेणियाँ हैं—ज्ञान सम्प्रदाय (पण्डितों) द्वारा संचालित चिन्तन-कार्य, सामान्य जनता द्वारा वैदिक विधानों के अनुसार संचालित सकाम कर्म तथा भक्तिमय सेवा में न लगे हुए अध्यात्मवादियों के कार्य। इन श्रेणियों की भी कई-कई शाखाएँ हैं, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्तियों तथा दिव्य गुणों के कारण कर्म, ज्ञान, योग इत्यादि में लगे जिज्ञासु का मन आकृष्ट कर लेते हैं। परम भगवान् का व्यक्तित्व, उनकी शक्तियाँ तथा उनके दिव्य गुण अचिन्त्य शक्तियों से पूर्ण हैं। गम्भीर जिज्ञासुओं के लिए ये अत्यन्त आकर्षक हैं। फलस्वरूप भगवान् को कृष्ण अर्थात् सर्वाकर्षक कहते हैं।

সনকাদি-শুকদেব তাহাতে প্রমাণ ।
এই-মত নানা অর্থ করেন ব্যাখ্যান ॥ ১৯৮॥

सनकादि-शुकदेव ताहाते प्रमाण ।
एइ-मत नाना अर्थ करेन व्याख्यान ॥ १९८॥

सनक-आदि—सनक आदि चार ऋषि; **शुकदेव**—तथा शुकदेव गोस्वामी; **ताहाते**—इसका; **प्रमाण**—प्रमाण; **एइ-मत**—इस प्रकार; **नाना**—विविध; **अर्थ**—अर्थ; **करेन**—करते हैं; **व्याख्यान**—व्याख्या।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने शुकदेव गोस्वामी तथा सनक, सनत्कुमार, सनातन और सनन्दन नामक चार ऋषियों का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए इस श्लोक की व्याख्या की। इस तरह महाप्रभु ने विविध अर्थ तथा व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं।

तात्पर्य

कृष्ण के सर्वाकर्षक होने की पुष्टि चारों ऋषियों तथा शुकदेव गोस्वामी के कार्यों से होती है। ये सभी मुक्त पुरुष (आत्माराम) होने पर भी भगवान्

के गुणों एवं लीलाओं के प्रति आकृष्ट हुए थे। इसीलिए कहा गया है—*मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते* (*चैतन्य-चरितामृत, मध्य* २४.११२)—"मुक्त पुरुष भी भगवान् कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकृष्ट होते हैं और उनकी भक्तिमय सेवा में संलग्न होते हैं। शुकदेव गोस्वामी तथा *चतु:सन* नाम से विख्यात चारों कुमार अपने जीवन के प्रारम्भ से ही मुक्त थे तथा ब्रह्मपद को प्राप्त थे। फिर भी वे भगवान् कृष्ण के गुणों के प्रति आकृष्ट हुए थे और उनकी सेवा में लग गये थे। चारों कुमार भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर अर्पित फूलों की सुगन्ध से आकर्षित होकर उनके भक्त बने। शुकदेव गोस्वामी ने अपने पिता व्यासदेव की कृपा से *श्रीमद्भागवत* सुनी, जिससे वे कृष्ण के प्रति आकृष्ट हुए और महान् भक्त बने। निष्कर्ष यह है कि भगवान् की सेवा द्वारा प्राप्त आनन्द, निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति से मिलने वाले *ब्रह्मानन्द* से अवश्य ही श्रेष्ठ है।

शुनि' भट्टाचार्येर मने हैल चमत्कार ।
प्रभुके कृष्ण जानि' करे आपना धिक्कार ॥ १९९॥

शुनि' भट्टाचार्येर मने हैल चमत्कार ।
प्रभुके कृष्ण जानि' करे आपना धिक्कार ॥ १९९॥

शुनि'—यह सुनकर; **भट्टाचार्येर**—सार्वभौम भट्टाचार्य के; **मने**—मन में; **हैल**—हो उठा; **चमत्कार**—चमत्कार; **प्रभुके**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **जानि'**—जानकर; **करे**—करते हैं; **आपना**—स्वयं; **धिक्कार**—धिक्कार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से आत्माराम श्लोक की व्याख्या सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य चकित रह गये। तब वे समझ गये कि श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् कृष्ण हैं और उन्होंने स्वयं को निम्नलिखित शब्दों से धिक्कारा।

'ইঁহো ত' সাক্ষাৎকৃষ্ণ,—মুঞি না জানিয়া ।
মহা-অপরাধ কৈনু গর্বিত হইয়া' ॥২০০॥

'ইঁহো ত' সাক্ষাৎকৃষ্ণ,—মুঞি না জানিয়া ।
মহা-অপরাধ কৈনু গর্বিত হইয়া' ॥ ২০০॥

ইঁহো—श्री चैतन्य महाप्रभु; **त'**—निस्सन्देह; **साक्षात्**—साक्षात्; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **मुञि**—मैंने; **ना**—नहीं; **जानिया**—जानकर; **महा-अपराध**—महान् अपराध; **कैनु**—किया; **गर्वित**—गर्वित; **हइया**—होकर।

अनुवाद

"चैतन्य महाप्रभु निश्चय ही साक्षात् भगवान् कृष्ण हैं। उन्हें न समझ पाने के कारण और अपने पाण्डित्य पर अत्यन्त गर्वित होने के कारण मैंने अनेक अपराध किये हैं।"

আত্ম-নিন্দা করি' লৈল প্রভুর শরণ ।
কৃপা করিবারে তবে প্রভুর হৈল মন ॥২০১॥

আত্ম-নিন্দা করি' লৈল প্রভুর শরণ ।
কৃপা করিবারে তবে প্রভুর হৈল মন ॥ ২০১॥

আত্ম-নিন্দা—आत्म निन्दा; **করি'**—करके; **লৈল**—ली; **প্রভুর**—प्रभु की; **শরণ**—शरण; **কৃপা**—कृपा; **করিবারে**—करने के लिए; **তবে**—तब; **প্রভুর**—महाप्रभु का; **হৈল**—हुआ; **মন**—मन।

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने अपने आपको अपराधी कहकर धिक्कारा और महाप्रभु की शरण ग्रहण की, तो महाप्रभु का उन पर कृपा करने का मन हुआ।

নিজ-রূপ প্রভু তাঁরে করাইল দর্শন ।
চতুর্ভুজ-রূপ প্রভু হইলা তখন ॥২০২॥

নিজ-রূপ প্রভু তাঁরে করাইল দর্শন ।
চতুর্ভুজ-রূপ প্রভু হইলা তখন ॥ ২০২॥

নিজ-রূপ—निजी रूप; **প্রভু**—प्रभु; **তাঁরে**—उनको; **করাইল**—किया; **দর্শন**—दर्शन; **চতুর্-ভুজ**—चतुर्भुज; **রূপ**—रूप; **প্রভু**—महाप्रभु; **হইলা**—हो गये; **তখন**—उस समय।

अनुवाद

उन पर कृपा करने हेतु श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने विष्णु रूप का दर्शन कराया। उन्होंने तुरन्त चतुर्भुज रूप धारण कर लिया।

দেখাইল তাঁরে আগে চতুর্ভুজ-রূপ ।
পাছে শ্যাম-বংশী-মুখ স্বকীয় স্বরূপ ॥২০৩॥

দেখাইল তাঁরে আগে চতুর্ভুজ-রূপ ।
পাছে শ্যাম-বংশী-মুখ স্বকীয় স্বরূপ ॥ ২০৩॥

দেখাইল—দিখায়া; **তাঁরে**—উনকো; **আগে**—সর্বপ্রথম; **চতুর্-ভুজ-রূপ**—চতুর্ভুজ রূপ; **পাছে**—বাদ মেঁ; **শ্যাম**—শ্যাম; **বংশী-মুখ**—বংশীধারী মুখ; **স্বকীয়**—অপনা; **স্বরূপ**—স্বরূপ।

অনুবাদ

শ্রী চৈতন্য মহাপ্রভু ने सर्वप्रथम अपना चतुर्भुज रूप दिखलाया और फिर वे उनके समक्ष कृष्ण के अपने मूल रूप में श्याम वर्ण तथा अधरों पर वंशी धारण किये प्रकट हुए।

দেখি' সার্বভৌম দণ্ডবৎকরি' পড়ি' ।
পুনঃ উঠি' স্তুতি করে দুই কর যুড়ি' ॥২০৪॥

দেখি' সার্বভৌম দণ্ডবৎকরি' পড়ি' ।
পুনঃ উঠি' স্তুতি করে দুই কর যুড়ি' ॥ ২০৪॥

দেখি'—वह देखकर; **সার্বভৌম**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **দণ্ডবৎ**—दण्डवत् प्रणाम; **করি'**—करके; **পড়ি'**—गिरकर; **পুনঃ**—पुनः; **উঠি'**—खड़े होकर; **স্তুতি**—स्तुति; **করে**—करते हैं; **দুই**—दोनों; **কর**—हाथ; **যুড়ি'**—जोड़कर।

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु में भगवान् कृष्ण का स्वरूप देखा, तो वे तुरन्त उन्हें दण्डवत् प्रणाम करने के लिए गिर पड़े। फिर वे खड़े हुए और दोनों हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

প্রভুর কৃপায় তাঁর স্ফুরিল সব তত্ত্ব ।
নাম-প্রেম-দান-আদি বর্ণেন মহত্ত্ব ॥২০৫॥

প্রভুর কৃপায় তাঁর স্ফুরিল সব তত্ত্ব ।
নাম-প্রেম-দান-আদি বর্ণেন মহত্ত্ব ॥ ২০৫॥

প্রভুর—महाप्रभु की; **কৃপায়**—कृपा से; **তাঁর**—उनको; **স্ফুরিল**—प्रकट हो गया; **সব**—सब; **তত্ত্ব**—तत्त्व; **নাম**—पावन नाम; **প্রেম-দান**—भगवत्प्रेम का दान; **আদি**—आदि; **বর্ণেন**—वर्णन करते हैं; **মহত্ত্ব**—महत्त्व।

अनुवाद

महाप्रभु की कृपा से सार्वभौम भट्टाचार्य को सभी तत्त्व स्फुरित हो गये और वे भगवन्नाम का कीर्तन तथा भगवत्प्रेम का सर्वत्र वितरण करने के महत्त्व को समझ सके।

শত শ্লোক কৈল এক দণ্ড না যাইতে ।
বৃহস্পতি তৈছে শ্লোক না পারে করিতে ॥২০৬॥

শত শ্লোক কৈল এক দণ্ড না যাইতে ।
বৃহস্পতি তৈছে শ্লোক না পারে করিতে ॥ ২০৬॥

শত—एक सौ; **শ্লোক**—श्लोक; **কৈল**—रचे; **এক**—एक; **দণ্ড**—२४ मिनट की अवधि; **না**—नहीं; **যাইতে**—गुजरना; **বৃহস্পতি**—स्वर्ग लोकों के पुरोहित बृहस्पति; **তৈছে**—ऐसे; **শ্লোক**—श्लोक; **না**—नहीं; **পারে**—सक्षम; **করিতে**—रचने में।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने अल्प समय में सौ श्लोक रच दिये। निस्सन्देह स्वर्गलोक के पुरोहित बृहस्पति भी इतनी शीघ्रता से श्लोकों की रचना नहीं कर सकते थे।

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा रचित सौ सुन्दर श्लोकों वाली पुस्तक का नाम *सुश्लोक-शतक* है।

শুনি' সুখে প্রভু তাঁরে কৈল আলিঙ্গন ।
ভট্টাচার্য প্রেমাবেশে হৈল অচেতন ॥২০৭॥

শুনি' সুখে প্রভু তাঁরে কৈল আলিঙ্গন ।
ভট্টাচার্য প্রেমাবেশে হৈল অচেতন ॥ ২০৭॥

শুনি'—सुनकर; **সুখে**—सुख में; **প্রভু**—चैतन्य महाप्रभु; **তাঁরে**—सार्वभौम भट्टाचार्य;

कैल—किया; **आलिङ्गन**—आलिंगन; **भट्टाचार्य्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **प्रेम-आवेशे**—प्रेमावेश में आकर; **हैल**—हो गये; **अचेतन**—अचेत।

अनुवाद

एक सौ श्लोक सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्य का आलिंगन किया और भगवत्प्रेम से अभिभूत होने के कारण सार्वभौम भट्टाचार्य तुरन्त अचेत हो गये।

अश्रु, स्तम्भ, पुलक, स्वेद, कम्प थरहरि ।
नाचे, गाय, कान्दे, पड़े प्रभु-पद धरि' ॥२०८॥

अश्रु, स्तम्भ, पुलक, स्वेद, कम्प थरहरि ।
नाचे, गाय, कान्दे, पड़े प्रभु-पद धरि' ॥ २०८ ॥

अश्रु—अश्रु; **स्तम्भ**—जड़ावस्था; **पुलक**—पुलक होना; **स्वेद**—पसीना; **कम्प**—कम्पन; **थरहरि**—हिलना डुलना; **नाचे**—नाचते; **गाय**—गाते; **कान्दे**—रोते; **पड़े**—नीचे गिरते; **प्रभु-पद**—महाप्रभु के चरणकमल; **धरि'**—पकड़कर।

अनुवाद

भगवत्प्रेम के भावावेश के कारण भट्टाचार्य की आँखों से आँसू झर रहे थे और उनका शरीर स्तम्भित था। वे पुलकित हो गये और उनको पसीना आ गया; वे काँपने और थरथराने लगे। वे कभी नाचते, कभी गाते, कभी रोते और कभी महाप्रभु के चरणकमलों का स्पर्श करने के लिए नीचे गिर पड़ते।

देखि' गोपीनाथाचार्य हरषित-मन ।
भट्टाचार्यের নৃত্য দেখি' হাসে প্রভুর গণ ॥২০৯॥

देखि' गोपीनाथाचार्य्य हरषित-मन ।
भट्टाचार्य्येर नृत्य देखि' हासे प्रभुर गण ॥ २०९ ॥

देखि'—यह देखकर; **गोपीनाथ-आचार्य्य**—गोपीनाथ आचार्य; **हरषित-मन**—प्रसन्न चित्त; **भट्टाचायेर**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **नृत्य**—नृत्य; **देखि'**—देखकर; **हासे**—हँसते; **प्रभुर गण**—चैतन्य महाप्रभु के पार्षद।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य को इस भावावेश में देखकर गोपीनाथ आचार्य अत्यधिक हर्षित हुए। श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी पार्षद भट्टाचार्य को इस तरह नाचते देखकर हँस पड़े।

গোপীনাথাচার্য কহে মহাপ্রভুর প্রতি ।
'সেই ভট্টাচার্যের প্রভু কৈলে এই গতি' ॥২১০॥

गोपीनाथाचार्य्य कहे महाप्रभुर प्रति ।
'सेइ भट्टाचार्य्येर प्रभु कैले एइ गति' ॥ २१० ॥

गोपीनाथ-आचार्य्य—गोपीनाथ आचार्य; **कहे**—कहा; **महाप्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **प्रति**—को; **सेइ भट्टाचार्य्येर**—भट्टाचार्य पर; **प्रभु**—मेरे प्रभु; **कैले**—आपने बनाई है; **एइ गति**—ऐसी स्थिति।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से कहा, "हे प्रभु, आपने सार्वभौम भट्टाचार्य की यह गति बना दी है।"

প্রভু কহে,—'তুমি ভক্ত, তোমার সঙ্গ হৈতে ।
জগন্নাথ ইঁহারে কৃপা কৈল ভাল-মতে' ॥২১১॥

प्रभु कहे,—'तुमि भक्त, तोमार सङ्ग हैते ।
जगन्नाथ इँहारे कृपा कैल भाल-मते' ॥ २११ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **तुमि भक्त**—आप भक्त हो; **तोमार सङ्ग हैते**—आपके संग के कारण; **जगन्नाथ**—भगवान् जगन्नाथ ने; **इँहारे**—उन पर; **कृपा**—कृपा; **कैल**—दिखाई; **भाल-मते**—बहुत अच्छी तरह।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "आप भक्त हैं। आपकी संगति के कारण ही जगन्नाथ भगवान् ने इन पर यह कृपा की है।"

তবে ভট্টাচার্যে প্রভু সুস্থির করিল ।
স্থির হঞা ভট্টাচার্য বহু স্তুতি কৈল ॥২১২॥

तबे भट्टाचार्य्ये प्रभु सुस्थिर करिल ।
स्थिर हञा भट्टाचार्य्य बहु स्तुति कैल ॥ २१२ ॥

तबे—तब; **भट्टाचार्य्ये**—सार्वभौम भट्टाचार्य को; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **सु-स्थिर**—शान्त; **करिल**—किया; **स्थिर हञा**—शान्त होकर; **भट्टाचार्य्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य ने; **बहु**—बहुत; **स्तुति**—प्रार्थनाएँ; **कैल**—कीं।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने भट्टाचार्य को शान्त किया। शान्त होने पर उन्होंने महाप्रभु की अनेक प्रकार से स्तुतियाँ कीं।

'जगत्तारिले तुमि,—सेह अल्प-कार्य ।
आमा उद्धारिले तुमि,—ए शक्ति आश्चर्य ॥ २१३ ॥
'जगत् निस्तारिले तुमि,—सेह अल्प-कार्य्य ।
आमा उद्धारिले तुमि,—ए शक्ति आश्चर्य्य ॥ २१३ ॥

जगत्—सारा संसार; **निस्तारिले**—उद्धार किया है; **तुमि**—आपने; **सेह**—वह; **अल्प-कार्य्य**—थोड़ा सा कार्य; **आमा**—मेरा; **उद्धारिले**—उद्धार किया है; **तुमि**—आपने; **ए**—यह; **शक्ति**—शक्ति; **आश्चर्य्य**—आश्चर्यजनक।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "हे प्रभु, आपने सारे जगत् का उद्धार किया है, किन्तु यह कोई बड़ा काम नहीं है। किन्तु आपने मेरा भी उद्धार कर दिया, जो निश्चित रूप से अद्भुत शक्ति का काम है।

तर्क-शास्त्रे जड़ आमि, यैछे लौह-पिण्ड ।
आमा द्रवाइले तुमि, प्रताप प्रचण्ड' ॥ २१४ ॥
तर्क-शास्त्रे जड़ आमि, य्रैछे लौह-पिण्ड ।
आमा द्रवाइले तुमि, प्रताप प्रचण्ड' ॥ २१४ ॥

तर्क-शास्त्रे—तर्क शास्त्र के कारण; **जड़**—जड़ मस्तिष्क; **आमि**—मैं; **य्रैछे**—की तरह; **लौह-पिण्ड**—लोहे की छड़; **आमा**—मुझे; **द्रवाइले**—पिघला दिया; **तुमि**—आपने; **प्रताप**—शक्ति; **प्रचण्ड**—बहुत बड़ी।

अनुवाद

"तर्कशास्त्र सम्बन्धी अनेक पुस्तकें पढ़ने के कारण मेरी जड़ बुद्धि लोहे की छड़ के समान बन गई थी। फिर भी आपने मुझे द्रवित कर दिया, अतएव आपका प्रभाव अत्यन्त प्रचण्ड है।"

स्तुति शुनि' महाप्रभु निज वासा आइला ।
भट्टाचार्य आचार्य-द्वारे भिक्षा कराइला ॥ २१५ ॥
स्तुति शुनि' महाप्रभु निज वासा आइला ।
भट्टाचार्य्य आचार्य्य-द्वारे भिक्षा कराइला ॥ २१५ ॥

स्तुति शुनि'—स्तुति (प्रार्थना) सुनने के बाद; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **निज**—अपने; **वासा**—निवास-स्थान को; **आइला**—लौट आये; **भट्टाचार्य्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **आचार्य्य-द्वारे**—गोपीनाथ आचार्य के द्वारा; **भिक्षा**—दोपहर का भोजन; **कराइला**—करवाया।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा की गई स्तुति सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निवासस्थान पर लौट आये और भट्टाचार्य ने गोपीनाथ आचार्य के माध्यम से उन्हें वहीं पर भोजन करवाया।

आर दिन प्रभु गेला जगन्नाथ-दरशने ।
दर्शन करिला जगन्नाथ-शय्योत्थाने ॥ २१६ ॥
आर दिन प्रभु गेला जगन्नाथ-दरशने ।
दर्शन करिला जगन्नाथ-शय्योत्थाने ॥ २१६ ॥

आर दिन—अगले दिन; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **गेला**—गये; **जगन्नाथ-दरशने**—जगन्नाथ मन्दिर में दर्शन करने के लिए; **दर्शन करिला**—दर्शन किया; **जगन्नाथ-शय्या-उत्थाने**—जगन्नाथ के प्रातः काल शय्या से उठने का।

अनुवाद

अगले दिन प्रातःकाल श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजी का दर्शन करने मन्दिर गये और उन्होंने भगवान् के शय्या से उठने के दर्शन किये।

पूजारी आनिया माला-प्रसादान्न दिला ।
प्रसादान्न-माला पाञा प्रभु हर्ष हैला ॥२१७॥

पूजारी आनिया माला-प्रसादान्न दिला ।
प्रसादान्न-माला पाञा प्रभु हर्ष हैला ॥ २१७॥

पूजारी—पुजारी; **आनिया**—लाकर; **माला**—मालाएँ; **प्रसाद-अन्न**—अन्न का प्रसाद; **दिला**—दिया; **प्रसाद-अन्न**—अन्न प्रसाद; **माला**—और मालाएँ; **पाञा**—पाकर; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **हर्ष**—हर्षित; **हैला**—हो गये।

अनुवाद

पुजारी ने उन्हें जगन्नाथजी को अर्पित फूल-मालाएँ तथा प्रसाद लाकर दिये। इससे महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।

सेइ प्रसादान्न-माला अञ्चले बान्धिया ।
भट्टाचार्येर घरे आइला त्वरायुक्त हञा ॥२१८॥

सेइ प्रसादान्न-माला अञ्चले बान्धिया ।
भट्टाचार्येर घरे आइला त्वरायुक्त हञा ॥ २१८॥

सेइ प्रसाद-अन्न—वह प्रसाद; **माला**—और मालाएँ; **अञ्चले**—अपने वस्त्र के सिरे में (कोने में); **बान्धिया**—बाँधकर; **भट्टाचार्येर**—सार्वभौम भट्टाचार्य के; **घरे**—घर को; **आइला**—चले गये; **त्वरा-युक्त**—शीघ्रता से; **हञा**—होकर।

अनुवाद

इस प्रसाद तथा माला को सावधानी से कपड़े में बाँधकर श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य के घर की ओर तेजी से बढ़े।

अरुणोदय-काले हैल प्रभुर आगमन ।
सेइ-काले भट्टाचार्येर हैल जागरण ॥२१९॥

अरुणोदय-काले हैल प्रभुर आगमन ।
सेइ-काले भट्टाचार्येर हैल जागरण ॥ २१९॥

अरुण-उदय—सूर्योदय से पूर्व; **काले**—उस समय; **हैल**—वहाँ हुआ; **प्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु का; **आगमन**—आगमन; **सेइ-काले**—उस समय; **भट्टाचार्येर**—सार्वभौम भट्टाचार्य का; **हैल**—हुआ; **जागरण**—शय्या से जागरण।

अनुवाद

वे सूर्योदय होने से थोड़ा पहले भट्टाचार्य के घर पधारे। ठीक उसी समय भट्टाचार्य सोकर जगे थे।

'कृष्ण' 'कृष्ण' स्फुट कहि' भट्टाचार्य जागिला ।
कृष्ण-नाम शुनि' प्रभुर आनन्द बाड़िला ॥२२०॥

'कृष्ण' 'कृष्ण' स्फुट कहि' भट्टाचार्य जागिला ।
कृष्ण-नाम शुनि' प्रभुर आनन्द बाड़िला ॥ २२०॥

कृष्ण कृष्ण—कृष्ण का नाम जपते हुए; **स्फुट**—स्पष्टतया; **कहि'**—कहकर; **भट्टाचार्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **जागिला**—शय्या से उठे; **कृष्ण-नाम**—भगवान् कृष्ण का पावन नाम; **शुनि'**—सुनकर; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **आनन्द**—आनन्द; **बाड़िला**—बढ़ गया।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उठते ही स्पष्ट रूप से "कृष्ण, कृष्ण" का उच्चारण किया। श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें कृष्ण-नाम का उच्चारण करते सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए।

बाहिरे प्रभुर तेंहो पाइल दरशन ।
आस्ते-व्यस्ते आसि' कैल चरण वन्दन ॥२२१॥

बाहिरे प्रभुर तेंहो पाइल दरशन ।
आस्ते-व्यस्ते आसि' कैल चरण वन्दन ॥ २२१॥

बाहिरे—घर के बाहर; **प्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु के; **तेंहो**—उन्होंने; **पाइल**—पाये; **दरशन**—दर्शन; **आस्ते-व्यस्ते**—अति शीघ्रता में; **आसि'**—वहाँ आकर; **कैल**—किया; **चरण वन्दन**—चरणकमलों पर वन्दना।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने महाप्रभु को बाहर खड़े देखा, तो आतुरता से वे उनके पास गये और उनके चरणकमलों की वन्दना की।

बसिते आसन दिया दुँहेत बसिला ।
प्रसादान्न खुलि' प्रभु ताँर हाते दिला ॥२२२॥

वसिते आसन दिया दुँहेत वसिला ।
प्रसादान्न खुलि' प्रभु ताँर हाते दिला ॥ २२२॥

वसिते—बैठने के लिए; **आसन**—आसन; **दिया**—दिया; **दुँहेत**—वे दोनों; **वसिला**—बैठ गये; **प्रसाद-अन्न**—अन्न का प्रसाद; **खुलि'**—खोलकर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँर**—उनके; **हाते**—हाथ में; **दिला**—रख दिया।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने महाप्रभु को बैठने के लिए आसन दिया और फिर दोनों ने आसन ग्रहण किया। तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसाद खोला और उसे भट्टाचार्य के हाथों पर रख दिया।

प्रसादान्न पाञा भट्टाचार्येर आनन्द हैल ।
स्नान, सन्ध्या, दन्त-धावन यद्यपि ना कैल ॥ २२३॥

प्रसादान्न पाञा भट्टाचार्यैर आनन्द हैल ।
स्नान, सन्ध्या, दन्त-धावन यद्यपि ना कैल ॥ २२३॥

प्रसाद-अन्न—अन्न का प्रसाद; **पाञा**—पाकर; **भट्टाचार्यैर**—सार्वभौम भट्टाचार्य को; **आनन्द**—आनन्द; **हैल**—हुआ; **स्नान**—स्नान; **सन्ध्या**—प्रातः कालीन नियमित कार्य; **दन्त-धावन**—दाँत धोना; **यद्यपि**—यद्यपि; **ना**—नहीं; **कैल**—समाप्त किया।

अनुवाद

उस समय भट्टाचार्य ने न तो मुँह धोया था, न स्नान किया था, न ही प्रातःकालीन नित्य कर्म किया था। फिर भी वे जगन्नाथजी का प्रसाद पाकर अत्यन्त आनन्दित थे।

चैतन्य-प्रसादे मनेर सब जाड्य गेल ।
एइ श्लोक पड़ि' अन्न भक्षण करिल ॥२२४॥

चैतन्य-प्रसादे मनेर सब जाड्य गेल ।
एइ श्लोक पड़ि' अन्न भक्षण करिल ॥ २२४॥

चैतन्य-प्रसादे—श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से; **मनेर**—मन की; **सब**—सब; **जाड्य**—जड़ता; **गेल**—चली गई; **एइ श्लोक**—ये श्लोक; **पड़ि'**—पढ़कर; **अन्न**—प्रसाद; **भक्षण**—ग्रहण; **करिल**—किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से सार्वभौम भट्टाचार्य के मन की सारी जड़ता दूर हो गई थी। उन्होंने निम्नलिखित दो श्लोक पढ़कर उस प्रसाद को ग्रहण किया।

शुष्कं पर्युषितं वापि नीतं वा दूर-देशतः ।
प्राप्ति-मात्रेण भोक्तव्यं नात्र काल-विचारणा ॥२२५॥

शुष्कं पर्युषितं वापि नीतं वा दूर-देशतः ।
प्राप्ति-मात्रेण भोक्तव्यं नात्र काल-विचारणा ॥ २२५॥

शुष्कम्—शुष्क; **पर्युषितम्**—बासी; **वा**—अथवा; **अपि**—यद्यपि; **नीतम्**—लाया; **वा**—अथवा; **दूर-देशतः**—दूर देश के; **प्राप्ति-मात्रेण**—प्राप्त करते ही; **भोक्तव्यम्**—खाने के लिए; **न**—नहीं; **अत्र**—इसमें; **काल-विचारणा**—समय व स्थान का विचार।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "'भगवान् का महाप्रसाद पाते ही उसे तुरन्त ग्रहण कर लेना चाहिए, भले ही वह सूखा, बासी या दूर देश से लाया हुआ क्यों न हो। इसमें देश व काल का विचार नहीं करना चाहिए।

न देश-नियमस्तत्र न काल-नियमस्तथा ।
प्राप्तमन्नं द्रुतं शिष्टैर्भोक्तव्यं हरिरब्रवीत् ॥२२६॥

न देश-नियमस्तत्र न काल-नियमस्तथा ।
प्राप्तमन्नं द्रुतं शिष्टैर्भोक्तव्यं हरिरब्रवीत् ॥ २२६॥

न—नहीं; **देश**—देश का; **नियमः**—नियम; **तत्र**—उसमें; **न**—नहीं; **काल**—समय का; **नियमः**—नियम; **तथा**—तथा; **प्राप्तम्**—प्राप्त किया; **अन्नम्**—प्रसादम्; **द्रुतम्**—तुरन्त; **शिष्टैः**—भद्रपुरुषों द्वारा; **भोक्तव्यम्**—खाया जाने योग्य; **हरिः**—भगवान् ने; **अब्रवीत्**—कहा है।

अनुवाद

"'शिष्ट लोगों को चाहिए कि ज्योंही भगवान् कृष्ण का प्रसाद प्राप्त हो, त्योंही उसे ग्रहण कर लिया जाये; इसमें किसी प्रकार का संकोच

नहीं करना चाहिए। इसके लिए देश तथा काल के विषय में कोई नियम नहीं है। यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का आदेश है।'"

तात्पर्य

ये दोनों श्लोक *पद्म-पुराण* के हैं।

देखि' आनन्दित हैल महाप्रभुर मन ।
प्रेमाविष्ट हञा प्रभु कैला आलिङ्गन ॥२२७॥

देखि' आनन्दित हैल महाप्रभुर मन ।
प्रेमाविष्ट हञा प्रभु कैला आलिङ्गन ॥ २२७॥

देखि'—यह देखकर; **आनन्दित**—आनन्दित; **हैल**—होकर; **महाप्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **मन**—मन; **प्रेम-आविष्ट**—भगवत्प्रेम में मग्न; **हञा**—होकर; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु; **कैला**—किया; **आलिङ्गन**—आलिंगन।

अनुवाद

यह देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे भगवत्प्रेम में भावाविष्ट हो गये और उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य का आलिंगन किया।

दुइ-जने धरि' दुँहे करेन नर्तन ।
प्रभु-भृत्य दुँहा स्पर्शे, दोँहार फुले मन ॥२२८॥

दुइ-जने धरि' दुँहे करेन नर्तन ।
प्रभु-भृत्य दुँहा स्पर्शे, दोंहार फुले मन ॥ २२८॥

दुइ-जने—वे दोनों; **धरि'**—आलिंगन करके; **दुँहे**—दोनों; **करेन**—करते हैं; **नर्तन**—नृत्य; **प्रभु-भृत्य**—स्वामी तथा सेवक; **दुँहा**—दोनों; **स्पर्शे**—एक दूसरे को छूकर; **दोंहार**—दोनों के; **फुले**—प्रफुल्लित हुए; **मन**—मन।

अनुवाद

प्रभु तथा दास ने एक-दूसरे का आलिंगन किया और दोनों नाचने लगे। वे एक-दूसरे के स्पर्श मात्र से भावाविष्ट हो गये।

स्वेद-कम्प-अश्रु दुँहे आनन्दे भासिला ।
प्रेमाविष्ट हञा प्रभु कहिते लागिला ॥२२९॥

स्वेद-कम्प-अश्रु दुँहे आनन्दे भासिला ।
प्रेमाविष्ट हञा प्रभु कहिते लागिला ॥ २२९॥

स्वेद—पसीना; **कम्प**—कम्पन; **अश्रु**—अश्रु; **दुँहे**—दोनों; **आनन्दे**—दिव्य आनन्द में; **भासिला**—बहने लगे; **प्रेम-आविष्ट**—भगवत्-प्रेम में लीन होकर; **हञा**—होकर; **प्रभु**—महाप्रभु; **कहिते**—कहने; **लागिला**—लगे।

अनुवाद

जब वे नाचने लगे और आलिंगन करने लगे, तो उनके शरीरों में आध्यात्मिक लक्षण प्रकट होने लगे। उनको पसीना आ गया, वे काँपने तथा रोने लगे और महाप्रभु भावावेश में बोलने लगे।

"आजि मुञि अनायासे जिनिनु त्रिभुवन ।
आजि मुञि करिनु वैकुण्ठ आरोहण ॥२३०॥

"आजि मुञि अनायासे जिनिनु त्रिभुवन ।
आजि मुञि करिनु वैकुण्ठ आरोहण ॥ २३०॥

आजि—आज; **मुञि**—मैंने; **अनायासे**—बड़ी आसानी से; **जिनिनु**—विजय पाई; **त्रि-भुवन**—तीनों भुवनों पर; **आजि**—आज; **मुञि**—मैं; **करिनु**—किया; **वैकुण्ठ**—वैकुण्ठ; **आरोहण**—आरोहन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आज मैंने बड़ी आसानी से तीनों लोकों को जीत लिया है। आज मुझे वैकुण्ठ लोक प्राप्त हो गया है।"

तात्पर्य

यहाँ पर मानव-जीवन की सिद्धि का लक्ष्य संक्षेप में वर्णित किया गया है। मनुष्य को भौतिक ब्रह्माण्ड के सारे ग्रहों को पार करके, ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर आध्यात्मिक जगत् अर्थात् वैकुण्ठ लोक पहुँचना है। ये वैकुण्ठ लोक विविधता से पूर्ण आध्यात्मिक ग्रह-मण्डल हैं, जो भगवान् के निर्विशेष शारीरिक तेज—*ब्रह्मज्योति*—में स्थित हैं। मनुष्य इस भौतिक जगत् के भीतर स्वर्गलोक—चन्द्र या सूर्य-लोक या शुक्र ग्रह पर जाने की कामना कर सकता है, किन्तु यदि वह कृष्णभावना में आध्यात्मिक रूप से उन्नत है, तो वह इस भौतिक ब्रह्माण्ड के भीतर, यहाँ तक कि उच्च लोकों में भी रहना

नहीं चाहता। प्रत्युत वह ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर वैकुण्ठ लोक जाना श्रेयस्कर समझता है। तब वह वहाँ स्थित किसी एक वैकुण्ठ ग्रह में रह सकता है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के निर्देशन में भक्तगण सर्वोच्च वैकुण्ठ ग्रह, गोलोक वृन्दावन पहुँचना चाहते हैं, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके शाश्वत पार्षदों का निवास है।

আজি মোর পূর্ণ হৈল সর্ব অভিলাষ ।
সার্বভৌমের হৈল মহা-প্রসাদে বিশ্বাস ॥২৩১॥

आजि मोर पूर्ण हैल सर्व अभिलाष ।
सार्वभौमेर हैल महा-प्रसादे विश्वास ॥ २३१ ॥

आजि—आज; **मोर**—मेरी; **पूर्ण**—पूरी; **हैल**—हो गई; **सर्व**—सब; **अभिलाष**—इच्छाएँ; **सार्वभौमेर**—सार्वभौम भट्टाचार्य की; **हैल**—हो गई; **महा-प्रसादे**—भगवान् के उच्छिष्ट, महाप्रसाद में; **विश्वास**—विश्वास।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "मेरी समझ में आज मेरी सारी इच्छाएँ पूरी हो गईं, क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि सार्वभौम भट्टाचार्य को जगन्नाथजी के महाप्रसाद में श्रद्धा उत्पन्न हो गई है।

আজি তুমি নিষ্কপটে হৈলা কৃষ্ণাশ্রয় ।
কৃষ্ণ আজি নিষ্কপটে তোমা হৈল সদয় ॥২৩২॥

आजि तुमि निष्कपटे हैला कृष्णाश्रय ।
कृष्ण आजि निष्कपटे तोमा हैल सदय ॥ २३२ ॥

आजि—आज; **तुमि**—आप; **निष्कपटे**—बिना आशंका के निस्सन्देह; **हैला**—हो गये हैं; **कृष्ण-आश्रय**—भगवान् कृष्ण पर आश्रित; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **आजि**—आज; **निष्कपटे**—बिना किसी सन्देह के; **तोमा**—आपके प्रति; **हैल**—हो गये हैं; **स-दय**—बहुत दयालु।

अनुवाद

"निस्सन्देह, आज आपने निष्कपट होकर कृष्ण के चरणकमलों की

शरण ग्रहण की है और कृष्ण भी निष्कपट होकर आपके प्रति अत्यन्त दयालु हो गये हैं।

আজি সে খণ্ডিল তোমার দেহাদি-বন্ধন ।
আজি তুমি ছিন্ন কৈলে মায়ার বন্ধন ॥২৩৩॥

आजि से खण्डिल तोमार देहादि-बन्धन ।
आजि तुमि छिन्न कैले मायार बन्धन ॥ २३३ ॥

आजि—आज; **से**—वह; **खण्डिल**—टूट गया; **तोमार**—आपका; **देह-आदि-बन्धन**—देहात्म बुद्धि के कारण भौतिक बन्धन; **आजि**—आज; **तुमि**—आप; **छिन्न**—टुकड़े टुकड़े हो गया; **कैले**—किया; **मायार**—माया का; **बन्धन**—बन्धन।

अनुवाद

"हे प्रिय भट्टाचार्य, आज आप देहात्म-बुद्धि के भौतिक बन्धन से मुक्त हो गये। आपने माया के बन्धन को खण्ड-खण्ड कर दिया है।

আজি কৃষ্ণ-প্রাপ্তি-যোগ্য হৈল তোমার মন ।
বেদ-ধর্ম লঙ্ঘি' কৈলে প্রসাদ ভক্ষণ" ॥২৩৪॥

आजि कृष्ण-प्राप्ति-य्योग्य हैल तोमार मन ।
वेद-धर्म लङ्घि' कैले प्रसाद भक्षण" ॥ २३४ ॥

आजि—आज; **कृष्ण-प्राप्ति**—कृष्ण के चरणकमलों की प्राप्ति के लिए; **य्योग्य**—योग्य; **हैल**—हो गया है; **तोमार**—आपका; **मन**—मन; **वेद**—चार वेदों का; **धर्म**—धर्म; **लङ्घि'**—लांघकर; **कैले**—आपने किया है; **प्रसाद**—कृष्ण-प्रसाद; **भक्षण**—ग्रहण।

अनुवाद

"आज आपका मन कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने के योग्य हुआ है, क्योंकि आपने वैदिक नियमों का उल्लंघन करके भगवत्-प्रसाद ग्रहण किया है।

যেষাং স এষ ভগবান্দয়য়েদনন্তঃ
সর্বাত্মনাশ্রিত-পদো যদি নির্ব্যলীকম্ ।

ते दुस्तरामतितरन्ति च देव-मायाꣳ
नैषाꣳ ममाहमिति धीः श्व-शृगाल-भक्ष्ये ॥२३५॥

ग्रेषां स एष भगवान्दययेदनन्तः
सर्वात्मनाश्रित-पदो ग्रदि निर्व्यलीकम् ।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देव-मायां
नैषां ममाहमिति धीः श्व-शृगाल-भक्ष्ये ॥ २३५ ॥

ग्रेषाम्—पूर्णरूपेण शरणागत आत्माओं को; **सः**—वे; **एषः**—यह; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **दययेत्**—दया दिखाएँ; **अनन्तः**—अनन्त; **सर्व-आत्मना**—पूर्णतया, बिना किसी रूकावट के; **आश्रित-पदः**—भगवान् के आश्रितों पर; **ग्रदि**—यदि; **निर्व्यलीकम्**—छल रहित ; **ते**—ऐसे व्यक्ति; **दुस्तराम्**—दुस्तर, कठिन; **अतितरन्ति**—पार करते हैं; **च**—और; **देव-मायाम्**—भ्रामक भौतिक शक्ति; **न**—नहीं; **एषाम्**—यह; **मम अहम्**—"मेरा" एवं "मैं"; **इति**—ऐसी; **धीः**—बुद्धि; **श्व-शृगाल-भक्ष्ये**—कुत्तों और गीदड़ों द्वारा खाये जाने योग्य शरीर में।

अनुवाद

"'जब मनुष्य निष्कपट भाव से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, तो असीम दयालु भगवान् उस पर अपनी अहैतुकी कृपा दिखलाते हैं। इस तरह वह अज्ञान के दुर्लंघ्य सागर को पार कर सकता है। जिसकी बुद्धि देहात्म-बोध में लगी रहती है और जो यह सोचता है कि, "मैं यह शरीर हूँ" वह कुत्तों तथा सियारों का उपयुक्त भोजन है। परम भगवान् ऐसे व्यक्ति पर कभी कृपा नहीं करते।'"

तात्पर्य

भगवान् कभी भी ऐसे लोगों पर कृपा नहीं करते, जो देहात्म-बुद्धि-परायण हैं। जैसे कृष्ण *भगवद्गीता* (१८.६६) में स्पष्ट रूप से कहते हैं :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"सभी प्रकार के धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्त कर दूँगा। डरो मत।"

श्री चैतन्य महाप्रभु ने जो श्लोक (*श्रीमद्भागवत* २.७.४२) से उद्धृत किया है, उसमें श्रीकृष्ण के कथन की व्याख्या की गई है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन

को देहात्म-बुद्धि से उबारने के लिये अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की। भगवान् ने *भगवद्गीता* के द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ में ही (२.१३) अर्जुन को कृपा प्रदान की, जहाँ उन्होंने कहा—*देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।* इस शरीर में एक स्वामी होता है और व्यक्ति को शरीर में आत्मबुद्धि नहीं करना चाहिए। यह पहला उपदेश है, जो किसी भी भक्त को आत्मसात् करना चाहिए। यदि वह देहात्म बुद्धि में है, तो वह अपने वास्तविक स्वरूप को समझ पाने और भगवान् की प्रेमाभक्ति करने में असमर्थ रहता है। दिव्य पद प्राप्त किये बिना न तो भगवान् की अहैतुकी कृपा की आशा की जा सकती है, न ही अज्ञान के विशाल सागर को पार किया जा सकता है। भगवान् कृष्ण ने इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (७.१४) में इस प्रकार की है—*मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।* कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण किये बिना माया के पाश से मुक्त होने की आशा व्यर्थ है। *श्रीमद्भागवत* (१०.२.३२) के अनुसार माया के बन्धन से अपने आपको मुक्त समझने वाले मायावादी संन्यासी *विमुक्तमानिनः* कहलाते हैं। वास्तव में वे मुक्त नहीं होते, अपितु वे अपने आपको मुक्त समझते हैं और ऐसा मानते हैं कि वे स्वयं नारायण बन गये हैं। यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें यह ज्ञान हो चुका है कि वे भौतिक शरीर नहीं, बल्कि आत्मा हैं, फिर भी वे आत्मा के कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं, जो परमात्मा की सेवा करना है। इसलिए उनकी बुद्धि अशुद्ध रहती है। जब तक मनुष्य की बुद्धि निर्मल नहीं हो जाती, तब तक वह उसका उपयोग भक्ति को समझने में नहीं कर सकता। भक्ति का शुभारम्भ तो तब होता है जब मन, बुद्धि तथा अहंकार पूर्णतया शुद्ध हो जाते हैं। मायावादी संन्यासी अपनी बुद्धि, मन तथा अहंकार को शुद्ध नहीं बनाते, फलस्वरूप वे न तो भगवान् की भक्ति में लग सकते हैं, न ही भगवान् की अहैतुकी कृपा की आशा कर सकते हैं। यद्यपि वे कठिन तपस्या करके अत्यन्त उच्च पद को प्राप्त होते हैं, फिर भी वे इसी भौतिक जगत् में भटकते रहते हैं और उन्हें भगवान् के चरणकमलों का आशीर्वाद नहीं मिल पाता। कभी-कभी वे ब्रह्मज्योति तक उन्नत्ति करते हैं, किन्तु उनके मन शुद्ध न होने के कारण उन्हें भौतिक जगत् में लौटना पड़ता है।

कर्मी पूर्णतया देहात्म-बुद्धि के वशीभूत होते हैं। ज्ञानियों को किताबी

ज्ञान तो रहता है कि वे शरीर नहीं हैं, किन्तु निर्विशेषवाद पर अत्यधिक बल देने के कारण उन्हें भी भगवान् के चरणकमलों के विषय में कोई ज्ञान नहीं होता। फलत: कर्मी तथा ज्ञानी दोनों ही भगवान् की कृपा प्राप्त करने और भक्त बनने के लिए अयोग्य होते हैं। इसलिए नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं—*ज्ञानकाण्ड कर्मकाण्ड, केवल विषेर भाण्ड*—जिन लोगों ने कर्मकाण्ड (सकाम कर्म) तथा ज्ञानकाण्ड (भगवद्विज्ञान के विषय में तर्कवितर्क) की विधि अपनाई है, समझना चाहिए कि उन्होंने विषैले बर्तन में भोजन किया है। वे जन्म-जन्मांतर भौतिक जगत् में रहने के लिए अभिशप्त हैं, जब तक कि वे कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करते। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (७.१९) से होती है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेव: सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ:॥

"जो व्यक्ति वास्तव में ज्ञानवान है, वह अनेक जन्मों के बाद मुझे समस्त कारणों का कारण समझकर मेरी शरण में आता है। ऐसा महात्मा दुर्लभ है।"

এত কহি' মহাপ্রভু আইলা নিজ-স্থানে ।
সেই হৈতে ভট্টাচার্যের খণ্ডিল অভিমানে ॥২৩৬॥

এত কহি' মহাপ্রভু আইলা নিজ-স্থানে ।
সেই হৈতে ভট্টাচার্য্যের খণ্ডিল অভিমানে ॥ ২৩৬ ॥

এত কহি'—इस प्रकार कहकर; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **आइला**—लौट गये; **निज-स्थाने**—अपने निवास-स्थान को; **सेइ हैते**—उस समय से; **भट्टाचार्य्येर**—सार्वभौम भट्टाचार्य का; **खण्डिल**—टूट गया; **अभिमाने**—झूठा अभिमान।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य से ऐसा कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निवास-स्थान लौट आये। उस दिन से भट्टाचार्य मुक्त हो गये, क्योंकि उनका मिथ्या अभिमान टूट चुका था।

চৈতন্য-চরণ বিনে নাহি জানে আন ।
ভক্তি বিনু শাস্ত্রের আর না করে ব্যাখ্যান ॥২৩৭॥

চৈতন্য-চরণ বিনে নাহি জানে আন ।
ভক্তি বিনু শাস্ত্রের আর না করে ব্যাখ্যান ॥ ২৩৭ ॥

चैतन्य-चरण—चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; **विने**—बिना; **नाहि**—नहीं; **जाने**—जानते हैं; **आन**—अन्य; **भक्ति**—भक्ति; **विनु**—बिज; **शास्त्रेर**—शास्त्र की; **आर**—अन्य; **ना**—नहीं; **करे**—करते हैं; **व्याख्यान**—व्याख्या।

अनुवाद

उस दिन से सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के अतिरिक्त और कुछ नहीं जाना। उस दिन से वे केवल भक्तियोग के अनुसार शास्त्रों की व्याख्या करने लगे।

গোপীনাথাচার্য তাঁর বৈষ্ণবতা দেখিয়া ।
'হরি' 'হরি' বলি' নাচে হাতে তালি দিয়া ॥২৩৮॥

গোপীনাথাচার্য্য তাঁর বৈষ্ণবতা দেখিয়া ।
'হরি' 'হরি' বলি' নাচে হাতে তালি দিয়া ॥ ২৩৮ ॥

गोपीनाथ-आचार्य्य—गोपीनाथ आचार्य, सार्वभौम भट्टाचार्य के साले; **ताँर**—सार्वभौम भट्टाचार्य की; **वैष्णवता**—वैष्णवत्व में दृढ़ श्रद्धा; **देखिया**—देखकर; **हरि हरि**—भगवान् का पावन नाम 'हरि हरि'; **बलि'**—कहकर; **नाचे**—नृत्य करते; **हाते तालि दिया**—अपने दोनों हाथों से ताली बजाकर।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य को वैष्णव सम्प्रदाय में दृढ़ता के साथ अवस्थित हुए देखकर उनके बहनोई गोपीनाथ आचार्य नाचने, ताली बजाने और "हरि! हरि" का उच्चारण करने लगे।

আর দিন ভট্টাচার্য আইলা দর্শনে ।
জগন্নাথ না দেখি' আইলা প্রভু-স্থানে ॥২৩৯॥

আর দিন ভট্টাচার্য্য আইলা দর্শনে ।
জগন্নাথ না দেখি' আইলা প্রভু-স্থানে ॥ ২৩৯ ॥

आर दिन—अगले दिन; **भट्टाचार्य्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **आइला**—आये; **दर्शने**—भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने; **जगन्नाथ**—भगवान् जगन्नाथ; **ना देखि'**—बिना देखे; **आइला**—आ गये; **प्रभु-स्थाने**—श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर।

अनुवाद

अगले दिन भट्टाचार्य जगन्नाथ मन्दिर गये, किन्तु मन्दिर पहुँचने के पहले वे चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने गये।

दण्डवत्करि' कैल बहु-विध स्तुति ।
दैन्य करि' कहे निज पूर्व-दुर्गति ॥ २४० ॥

दण्डवत्करि' कैल बहु-विध स्तुति ।
दैन्य करि' कहे निज पूर्व-दुर्गति ॥ २४० ॥

दण्डवत् करि'—दण्डवत् प्रणाम करने के बाद; **कैल**—उन्होंने की; **बहु-विध**—कई प्रकार की; **स्तुति**—स्तुतियाँ; **दैन्य करि'**—अत्यन्त विनम्रता में; **कहे**—वर्णन किया; **निज**—अपनी; **पूर्व-दुर्गति**—पहले की बुरी अवस्था।

अनुवाद

महाप्रभु से मिलने पर भट्टाचार्य ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। विविध प्रकार से उनकी स्तुति करने के बाद उन्होंने अत्यन्त दीन भाव से अपनी पूर्व दुर्गति का वर्णन किया।

भक्ति-साधन-श्रेष्ठ शुनिते हैल मन ।
प्रभु उपदेश कैल नाम-सङ्कीर्तन ॥ २४१ ॥

भक्ति-साधन-श्रेष्ठ शुनिते हैल मन ।
प्रभु उपदेश कैल नाम-सङ्कीर्तन ॥ २४१ ॥

भक्ति-साधन—भक्ति साधना में; **श्रेष्ठ**—सर्वश्रेष्ठ बात; **शुनिते**—सुनने को; **हैल**—था; **मन**—मन; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **उपदेश**—उपदेश; **कैल**—किया; **नाम-सङ्कीर्तन**—नाम संकीर्तन।

अनुवाद

तत्पश्चात् भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से पूछा, "भक्ति की साधना में

कौन-सा कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है?" महाप्रभु ने उत्तर दिया कि सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन है।

तात्पर्य

भक्ति को सम्पन्न करने की नौ विधियाँ हैं। *श्रीमद्भागवत* (७.५.२३) के निम्नलिखित श्लोक में इनका वर्णन है :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

भगवान् की महिमा का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, भगवान् के चरणकमलों की सेवा, मन्दिर में पूजा करना, स्तुति करना, भगवान् का दास बनना, भगवान् का सखा बनना तथा भगवान् के चरणकमलों में पूर्णतया आत्मसमर्पण करना—*सर्वात्म-निवेदन*—भक्ति की ये नौ विधियाँ हैं। *भक्तिरसामृतसिन्धु* में इनका विस्तार ६४ अंगों में किया गया है। जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने महाप्रभु से पूछा कि इनमें से कौन-सी विधि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त उत्तर दिया कि भगवान् के पवित्र नाम कीर्तन—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/ हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। तत्पश्चात् उन्होंने *बृहन्नारदीय पुराण* (३८.१२६) के निम्नलिखित श्लोक से अपने कथन की पुष्टि की।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ २४२ ॥

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ २४२ ॥

हरेः नाम—भगवान् हरि का पावन नाम; **हरेः नाम**—भगवान् हरि का पावन नाम; **हरेः नाम**—भगवान् का पावन नाम; **एव**—निश्चय ही; **केवलम्**—केवल; **कलौ**—इस कलियुग में; **न अस्ति**—नहीं है; **एव**—निश्चित रूप से; **न अस्ति**—नहीं है; **एव**—निश्चित रूप से; **न अस्ति**—नहीं है; **एव**—निश्चित रूप से; **गतिः**—साधन; **अन्यथा**—अन्य और कोई।

अनुवाद

"'कलह और दिखावे के इस युग में उद्धार का एकमात्र साधन

भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है, अन्य कोई नहीं है, अन्य कोई नहीं है।"

तात्पर्य

चूँकि इस युग के लोग बहुत पतित हैं, इसलिए वे केवल हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन ही कर सकते हैं। इस तरह वे देहात्म-बुद्धि से छुटकारा पा सकते हैं और भगवान् की सेवा में लगने के योग्य बन सकते हैं। जब तक मनुष्य समस्त कल्मषों से शुद्ध नहीं हो जाता, तब तक वह भगवान् की भक्तिमय सेवा में नहीं लग सकता। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (७.२८) में हुई है :

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥

"जिन लोगों ने पिछले जन्मों में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं, जिनके पापकर्म पूरी तरह नष्ट हो चुके हैं और जो मोह जनित द्वन्द्व से मुक्त हो चुके हैं, वे दृढ़तापूर्वक मेरी सेवा में लग जाते हैं।" कभी-कभी लोग तरुण युवकों तथा युवतीयों को कृष्णभावनामृत आन्दोलन में गम्भीरतापूर्वक कार्य करते देखकर विस्मित हो जाते हैं। पापकर्म—अवैध यौन सम्बन्ध, मांसाहार, नशा तथा जुआ—छोड़कर गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन करने से वे सारे कल्मष से शुद्ध हो चुके होते हैं। इसलिए वे भगवान् की भक्तिमय सेवा में पूरी तरह लग सकते हैं।

इस कलियुग में *हरि-कीर्तन* अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। *श्रीमद्भागवत* (१२.३.५१-५२) में भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने का महत्त्व बतलाया गया है :

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत॥
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात्॥

"दोषों के सागर समान इस कलियुग में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि

मनुष्य केवल हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करके कल्मषरहित हो सकता है और भगवद्धाम पहुँचने का पात्र बन सकता है। जो आत्म-साक्षात्कार सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता में विभिन्न यज्ञ करने से तथा द्वापर में भगवान् कृष्ण की पूजा करने से प्राप्त किया जाता था, उसे कलियुग में हरे कृष्ण का कीर्तन करने से प्राप्त किया जा सकता है।"

এই শ্লোকের অর্থ শুনাইল করিয়া বিস্তার ।
শুনি' ভট্টাচার্য-মনে হৈল চমৎকার ॥২৪৩॥

এই শ্লোকের অর্থ শুনাইল করিয়া বিস্তার ।
শুনি' ভট্টাচার্য্য-মনে হৈল চমৎকার ॥ ২৪৩॥

এই শ্লোকের—इस श्लोक का; **अर्थ**—अर्थ; **शुनाइल**—सुनाया; **करिया**—करके; **विस्तार**—विस्तार करके; **शुनि'**—सुनकर; **भट्टाचार्य्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य के; **मने**—मन में; **हैल**—हो गया; **चमत्कार**—चमत्कार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने बृहन्नारदीय-पुराण के हरेर्नाम श्लोक की विस्तार से व्याख्या की। सार्वभौम भट्टाचार्य उनकी व्याख्या सुनकर चकित रह गये।

গোপীনাথাচার্য বলে,—'আমি পূর্বে যে কহিল ।
শুন, ভট্টাচার্য, তোমার সেই ত' হইল' ॥২৪৪॥

গোপীনাথাচার্য্য বলে,—'আমি পূর্বে য়ে কহিল ।
শুন, ভট্টাচার্য্য, তোমার সেই ত' হইল' ॥ ২৪৪॥

गोपीनाथ-आचार्य्य—गोपीनाथ आचार्य; **बले**—कहते हैं; **आमि**—मैं; **पूर्वे**—पहले, पूर्वसमय में; **ये**—जो; **कहिल**—कहा; **शुन**—सुनो; **भट्टाचार्य्य**—मेरे प्रिय भट्टाचार्य; **तोमार**—आपके साथ; **सेइ**—वह; **त'**—निस्सन्देह; **ह-इल**—घटित हुआ है।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने सार्वभौम भट्टाचार्य को स्मरण कराया, "प्रिय भट्टाचार्य, मैंने आपसे जो कुछ पहले कहा था, अब वह घटित हो गया।"

तात्पर्य

गोपीनाथ आचार्य ने इसके पूर्व सार्वभौम भट्टाचार्य को बतलाया था कि जब उन्हें महाप्रभु की कृपा प्राप्त होगी, तभी वे भक्तियोग की दिव्य प्रक्रिया को भलीभाँति समझ सकेंगे। अब यह भविष्यवाणी पूरी हो चुकी थी। अब भट्टाचार्य पूरी तरह से वैष्णव बन चुके थे और बिना किसी दबाव के स्वत: सारे नियमों का पालन कर रहे थे। इसीलिए *भगवद्गीता* (२.४०) में कहा गया है—*स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्*—"केवल थोड़ी-सी भक्ति करके मनुष्य महान् से महान् संकट से बच सकता है।" सार्वभौम भट्टाचार्य विकट संकट में थे, क्योंकि वे मायावादी दर्शन के कट्टर अनुयायी थे। किन्तु किसी प्रकार वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्पर्क में आये और शुद्ध भक्त बन गये। इस तरह से वे निर्विशेषवाद के महान् गर्त में गिरने से बचा लिए गये।

भट्टाचार्य कहे ताँरे करि' नमस्कारे ।
तोमार सम्बन्धे प्रभु कृपा कैल मोरे ॥२४५॥
भट्टाचार्य्य कहे तारे करि' नमस्कारे ।
तोमार सम्बन्धे प्रभु कृपा कैल मोरे ॥ २४५॥

भट्टाचार्य्य कहे—सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; **ताँरे**—गोपीनाथ आचार्य को; **करि'**—करके; **नमस्कारे**—नमस्कार; **तोमार सम्बन्धे**—आपसे सम्बन्ध के कारण; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **कृपा**—कृपा; **कैल**—दिखाई; **मोरे**—मुझ पर।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य को नमस्कार करते हुए भट्टाचार्य ने कहा, "मैं आपका सम्बन्धी हूँ और आप भक्त हैं, अतएव आपकी कृपा से महाप्रभु ने मुझ पर कृपा की है।

तुमि—महाभागवत, आमि—तर्क-अन्धे ।
प्रभु कृपा कैल मोरे तोमार सम्बन्धे ॥२४६॥
तुमि—महाभागवत, आमि—तर्क-अन्धे ।
प्रभु कृपा कैल मोरे तोमार सम्बन्धे ॥ २४६॥

तुमि—आप; **महा-भागवत**—उत्तम श्रेणी के भक्त; **आमि**—मैं; **तर्क-अन्धे**—तर्कों के अन्धकार में; **प्रभु**—भगवान्; **कृपा**—कृपा; **कैल**—दिखाई; **मोरे**—मुझ पर; **तोमार**—आपके; **सम्बन्धे**—सम्बन्ध से।

अनुवाद

"आप महाभागवत (उच्च कोटि के भक्त) हैं और मैं तर्कशास्त्र के अन्धकार में पड़ा हुआ व्यक्ति। किन्तु भगवान् के साथ आपका सम्बन्ध होने के कारण भगवान् ने मुझे अपना आशीर्वाद प्रदान किया है।"

विनय शुनि' तुष्टो प्रभु कैल आलिङ्गन ।
कहिल,—याओ करह ईश्वर दरशन ॥२४७॥
विनय शुनि' तुष्टे प्रभु कैल आलिङ्गन ।
कहिल,—याओ करह ईश्वर दरशन ॥ २४७॥

विनय शुनि'—सार्वभौम भट्टाचार्य की यह विनम्र बात सुनकर; **तुष्टे**—तुष्ट होकर; **प्रभु**—महाप्रभु; **कैल**—किया; **आलिङ्गन**—आलिंगन; **कहिल**—कहा; **याओ**—जाकर; **करह**—करो; **ईश्वर दरशन**—भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर में दर्शन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस विनीत वचन से अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने भट्टाचार्य का आलिंगन करके उनसे कहा, "अब आप मन्दिर में भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने जाएँ।"

जगदानन्द दामोदर,—दुइ सङ्गे लञा ।
घरे आइल भट्टाचार्य जगन्नाथ देखिया ॥२४८॥
जगदानन्द दामोदर,—दुइ सङ्गे लञा ।
घरे आइल भट्टाचार्य्य जगन्नाथ देखिया ॥ २४८॥

जगदानन्द—जगदानन्द; **दामोदर**—दामोदर; **दुइ**—दो व्यक्ति; **सङ्गे**—उनके साथ; **लञा**—लेकर; **घरे**—अपने घर को; **आइल**—लौट आये; **भट्टाचार्य्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **जगन्नाथ**—भगवान् जगन्नाथ को; **देखिया**—मन्दिर में देखकर।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर के दर्शन करने के बाद सार्वभौम भट्टाचार्य जगदानन्द तथा दामोदर के साथ घर लौट आये।

उत्तम उत्तम प्रसाद बहुत आनिला ।
निज-विप्र-हाते दुई जना सङ्गे दिला ॥ २४९ ॥

उत्तम उत्तम—उत्तम; **प्रसाद**—जगन्नाथ को अर्पित भोजन का शेष; **बहुत**—बहुत; **आनिला**—लाये; **निज-विप्र**—अपने निजी ब्राह्मण सेवक के; **हाते**—हाथ में; **दुइ**—दोनों; **जना**—व्यक्तियों; **सङ्गे**—उसके साथ; **दिला**—दिया।

अनुवाद

भट्टाचार्य अपने साथ भगवान् जगन्नाथ का बहुत-सा सर्वोत्तम प्रसाद ले आये थे। उन्होंने यह सारा प्रसाद अपने ब्राह्मण सेवक तथा जगदानन्द और दामोदर को दे दिया।

निज कृत दुई श्लोक लिखिया ताल-पाते ।
'प्रभुके दिह' बलि' दिल जगदानन्द-हाते ॥ २५० ॥

निज कृत दुइ श्लोक लिखिया ताल-पाते ।
'प्रभुके दिह' बलि' दिल जगदानन्द-हाते ॥ २५० ॥

निज—स्वयं; **कृत**—रचित; **दुइ**—दो; **श्लोक**—श्लोक; **लिखिया**—लिखकर; **ताल-पाते**—ताल पत्र पर; **प्रभुके दिह**—श्री चैतन्य महाप्रभु को दीजिये; **बलि'**—यह कहकर; **दिल**—इसे दिया; **जगदानन्द-हाते**—जगदानन्द के हाथों में।

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने ताड़पत्र पर दो श्लोकों की रचना की और वह ताड़पत्र जगदानन्द प्रभु को देते हुए उनसे प्रार्थना की कि वे उसे श्री चैतन्य महाप्रभु को दे दें।

प्रभु-स्थाने आइला दुँहे प्रसाद-पत्री लञा ।
मुकुन्द दत्त पत्री निल तार हाते पाञा ॥ २५१ ॥

प्रभु-स्थाने आइला दुँहे प्रसाद-पत्री लञा ।
मुकुन्द दत्त पत्री निल तार हाते पाञा ॥ २५१ ॥

प्रभु-स्थाने—चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान पर; **आइला**—लौट गये; **दुँहे**—जगदानन्द और दामोदर दोनों; **प्रसाद**—प्रसाद; **पत्री**—ताल पत्र; **लञा**—लेकर; **मुकुन्द दत्त**—मुकुन्द दत्त; **पत्री**—तालपत्र; **निल**—लिया; **तार**—जगदानन्द के; **हाते**—हाथ में; **पाञा**—लेकर।

अनुवाद

तब जगदानन्द तथा दामोदर प्रसाद तथा वह लिखा ताड़पत्र लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु के पास लौट आये। किन्तु मुकुन्द दत्त ने वह ताड़पत्र महाप्रभु को दिये जाने के पूर्व ही जगदानन्द के हाथ से ले लिया।

दुई श्लोक बाहिर-भिते लिखिया राखिल ।
तबे जगदानन्द पत्री प्रभुके लञा दिल ॥ २५२ ॥

दुइ श्लोक बाहिर-भिते लिखिया राखिल ।
तबे जगदानन्द पत्री प्रभुके लञा दिल ॥ २५२ ॥

दुइ—दो; **श्लोक**—श्लोक; **बाहिर**—बाहर; **भिते**—दीवार पर; **लिखिया**—लिखकर; **राखिल**—रखे; **तबे**—तत्पश्चात्; **जगदानन्द**—जगदानन्द पण्डित; **पत्री**—तालपत्र; **प्रभुके**—महाप्रभु को; **लञा**—लाकर; **दिल**—दिया।

अनुवाद

तब मुकुन्द दत्त ने कमरे की बाहरी दीवाल पर दोनों श्लोकों को लिख दिये। इसके बाद जगदानन्द ने मुकुन्द दत्त से ताड़पत्र ले लिया और उसे श्री चैतन्य महाप्रभु को दे दिया।

प्रभु श्लोक पड़ि' पत्र छिण्डिया फेलिल ।
भित्त्ये देखि' भक्त सब श्लोक कण्ठे कैल ॥ २५३ ॥

प्रभु श्लोक पड़ि' पत्र छिण्डिया फेलिल ।
भित्त्ये देखि' भक्त सब श्लोक कण्ठे कैल ॥ २५३ ॥

प्रभु—महाप्रभु; **श्लोक**—श्लोक; **पड़ि'**—पढ़कर; **पत्र**—तालपत्र; **छिण्डिया**—टुकड़े टुकड़े करके; **फेलिल**—फेंक दिया; **भित्त्ये**—बाहर की दीवार पर; **देखि'**—देखकर; **भक्त**—भक्तगण; **सब**—सभी; **श्लोक**—श्लोक; **कण्ठे**—कंठस्थ; **कैल**—कर लिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने दोनों श्लोकों को पढ़ते ही ताड़पत्र को तुरन्त फाड़ डाला। किन्तु सारे भक्तों ने बाहरी दीवाल पर इन श्लोकों को पढ़े और उन्हें कण्ठस्थ कर लिये। ये श्लोक इस प्रकार थे।

वैराग्य-विद्या-निज-भक्ति-योग-
शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः ।
श्री-कृष्ण-चैतन्य-शरीर-धारी
कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥२५४॥

वैराग्य-विद्या-निज-भक्ति-योग-
शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः ।
श्री-कृष्ण-चैतन्य-शरीर-धारी
कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥ २५४॥

वैराग्य—जिससे कृष्णभावना विकसित नहीं होती उन सब चीजों से वैराग्य; **विद्या**—ज्ञान; **निज**—अपना; **भक्ति-योग**—भक्तियोग; **शिक्षा-अर्थम्**—शिक्षा देने के लिए; **एकः**—एक व्यक्ति; **पुरुषः**—परम पुरुष; **पुराणः**—अत्यन्त पुरातन अथवा शाश्वत; **श्री-कृष्ण-चैतन्य**—श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; **शरीर-धारी**—देह धारण करके; **कृपा-अम्बुधिः**—दिव्य कृपा के सागर; **यः**—जो; **तम्**—उनकी; **अहम्**—मैं; **प्रपद्ये**—शरण में जाता हूँ।

अनुवाद

"मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करता हूँ, जो हमें वास्तविक ज्ञान, अपनी भक्ति तथा कृष्णभावनामृत के विकास में बाधक वस्तुओं से विरक्ति सिखलाने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं। वे दिव्य कृपा के सिन्धु होने के कारण अवतरित हुए हैं। मैं उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ।

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगला श्लोक श्री कवि-कर्णपूर-कृत *चैतन्य-चन्द्रोदय नाटक* (६.७४-७५) में पाये जाते हैं।

कालान्नष्टं भक्ति-योगं निजं यः
प्रादुष्कर्तुं कृष्ण-चैतन्य-नामा ।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे
गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्त-भृङ्गः ॥२५५॥

कालान्नष्टं भक्ति-योगं निजं यः
प्रादुष्कर्तुं कृष्ण-चैतन्य-नामा ।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे
गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्त-भृङ्गः ॥ २५५॥

कालात्—भौतिक मनोवृत्तियों और सकाम कर्म तथा शुष्क ज्ञान के चिर काल तक दुरुपयोग से; **नष्टम्**—नष्ट; **भक्ति-योगम्**—भक्तियोग का विज्ञान; **निजम्**—जो केवल उन्हीं पर लागू होती है; **यः**—जो; **प्रादुष्कर्तुम्**—पुनः जागृत करने हेतु; **कृष्ण-चैतन्य-नामा**—श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु नामक; **आविर्भूतः**—जो प्रकट हुए हैं; **तस्य**—उनके; **पाद-अरविन्दे**—चरणकमलों में; **गाढ़म् गाढ़म्**—अत्यन्त घनिष्ठता से; **लीयताम्**—लीन हो जाये; **चित्त-भृङ्गः**—मधु-मक्खी की भाँति मेरी चेतना।

अनुवाद

"मधुकर के समान मेरी चेतना उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करे, जो अब श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में अपने प्रति प्राचीन भक्तियोग की शिक्षा देने के लिए प्रकट हुए हैं। यह भक्तियोग समय के प्रभाव से लुप्तप्राय हो चुका था।"

तात्पर्य

भगवद्गीता (४.७) में भगवान् कृष्ण द्वारा कहा गया है :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

"जब जब धार्मिक प्रथा का ह्रास और अधर्म की प्रधानता होती है, तब तब हे भरतवंशी, मैं अवतरित होता हूँ।"

चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के विषय में भी यही बात लागु होती है। श्री चैतन्य महाप्रभु इस जगत् में कृष्ण के प्रच्छन्न अवतार के रूप में प्रकट हुए, किन्तु उनके आविर्भाव की पुष्टि *श्रीमद्भागवत, महाभारत* तथा अन्य वैदिक शास्त्रों से होती है। वे इस जगत् के पतितात्माओं को शिक्षा देने के लिए प्रकट हुए, क्योंकि इस कलियुग में प्राय: हर व्यक्ति सकाम तथा अनुष्ठान-कर्मों में एवं मानसिक तर्क में लिप्त है। अतएव भक्तियोग को पुनर्जीवित करने की नितान्त आवश्यकता थी। इसीलिए भगवान् स्वयं भक्त-वेश में अवतरित हुए, जिससे पतित जनसमूह भगवान् के दृष्टान्त से लाभ उठा सके।

भगवद्गीता के अन्त में भगवान् कृष्ण ने अपने भक्त को पूर्ण आत्मसमर्पण का परामर्श देते हुए उसे संरक्षण देने का वचन दिया। दुर्भाग्यवश लोग इतने पतित हो गये हैं कि वे भगवान् कृष्ण के आदेशों को स्वीकार नहीं कर सकते। अतएव उसी उद्देश्य से कृष्ण पुन: अवतरित हुए, किन्तु उन्होंने यह कार्य भिन्न प्रकार से सम्पन्न किया। उन्होंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में हमें आदेश दिया कि हम उनकी शरण ग्रहण करें, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में उन्होंने हमें कृष्ण की शरण स्वीकार करने की विधि की शिक्षा दी। इसीलिए गोस्वामियों ने उनकी प्रशंसा इस प्रकार की है—*नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।* भगवान् श्रीकृष्ण निश्चय ही परमेश्वर हैं, किन्तु वे श्री चैतन्य महाप्रभु के समान उदार नहीं हैं। भगवान् कृष्ण ने मनुष्य को केवल यही आदेश दिया कि मेरे भक्त बनो (*मन्मना भव मद्भक्तो*), किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्णभावनामृत की विधि वास्तव में सिखलाई। यदि कोई भगवान् कृष्ण का भक्त बनना चाहता है, तो सर्वप्रथम उसे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी होगी, जैसाकि सार्वभौम भट्टाचार्य तथा अन्य उन्नत भक्तों ने किया।

এই দুই শ্লোক—ভক্ত-কণ্ঠে রত্ন-হার ।
সার্বভৌমের কীর্তি ঘোষে ঢক্কা-বাদ্যাকার ॥২৫৬॥

এই দুই শ্লোক—ভক্ত-কণ্ঠে রত্ন-হার ।
সার্বভৌমের কীর্তি ঘোষে ঢক্কা-বাদ্যাকার ॥ ২৫৬ ॥

एइ दुइ श्लोक—ये दो श्लोक; **भक्त-कण्ठे**—भक्तों के कंठ में; **रत्न-हार**—मोती (रत्न) के हार; **सार्वभौमेर**—सार्वभौम भट्टाचार्य की; **कीर्ति**—कीर्ति; **घोषे**—घोषित करना; **ढक्का**—ढोल के; **वाद्य**—वादन के; **आकार**—रूप में।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा रचित ये दोनों श्लोक उनके नाम तथा यश की घोषणा ढोल की थाप के समान उच्च स्वर से सदैव करते रहेंगे, क्योंकि ये श्लोक सारे भक्तों के कंठ का रत्नहार बन चुके हैं।

সার্বভৌম হৈলা প্রভুর ভক্ত একতান ।
মহাপ্রভুর সেবা-বিনা নাহি জানে আন ॥২৫৭॥

সার্বভৌম হৈলা প্রভুর ভক্ত একতান ।
মহাপ্রভুর সেবা-বিনা নাহি জানে আন ॥ ২৫৭ ॥

सार्वभौम—सार्वभौम भट्टाचार्य; **हैला**—हो गये; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **भक्त**—भक्त; **एकतान**—एकनिष्ठ; **महाप्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **सेवा**—सेवा; **विना**—के अतिरिक्त; **नाहि**—नहीं; **जाने**—जानते; **आन**—कुछ और।

अनुवाद

निस्सन्देह, सार्वभौम भट्टाचार्य चैतन्य महाप्रभु के अनन्य भक्त बन गये। महाप्रभु की सेवा के अतिरिक्त वे दूसरा कुछ भी नहीं जानते थे।

'শ্রী-কৃষ্ণ-চৈতন্য শচী-সূত গুণ-ধাম' ।
এই ধ্যান, এই জপ, লয় এই নাম ॥২৫৮॥

'শ্রী-কৃষ্ণ-চৈতন্য শচী-সূত গুণ-ধাম' ।
এই ধ্যান, এই জপ, লয় এই নাম ॥ ২৫৮ ॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य—श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु; **शची-सूत**—माता शची के पुत्र; **गुण-धाम**—सारे गुणों के आगार; **एइ**—यह; **ध्यान**—ध्यान; **एइ**—यह; **जप**—कीर्तन; **लय**—वे लेते हैं; **एइ**—यही; **नाम**—पावन नाम।

अनुवाद

भट्टाचार्य सदैव माता शची के पुत्र एवं समस्त सद्गुणों के आगार

श्रीकृष्ण चैतन्य के नाम का कीर्तन करते थे। निस्सन्देह नाम-कीर्तन ही उनका ध्यान बन गया।

এক-দিন সার্বভৌম প্রভু-আগে আইলা ।
নমস্কার করি' শ্লোক পড়িতে লাগিলা ॥২৫৯॥

एक-दिन सार्वभौम प्रभु-आगे आइला ।
नमस्कार करि' श्लोक पड़िते लागिला ॥ २५९ ॥

एक-दिन—एक दिन; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **प्रभु-आगे**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; **आइला**—आये; **नमस्कार करि'**—नमस्कार करके; **श्लोक**—एक श्लोक; **पड़िते लागिला**—पढ़ने लगे।

अनुवाद

एक दिन सार्वभौम भट्टाचार्य चैतन्य महाप्रभु के समक्ष आये और नमस्कार करने के बाद एक श्लोक सुनाने लगे।

ভাগবতের 'ব্রহ্ম-স্তবে'র শ্লোক পড়িলা ।
শ্লোক-শেষে দুই অক্ষর-পাঠ ফিরাইলা ॥২৬০॥

भागवतेर 'ब्रह्म-स्तवे'र श्लोक पड़िला ।
श्लोक-शेषे दुइ अक्षर-पाठ फिराइला ॥ २६० ॥

भागवतेर—श्रीमद्भागवत से; **ब्रह्म-स्तवेर**—ब्रह्माजी की स्तुतियों का; **श्लोक**—एक श्लोक; **पड़िला**—पढ़ा; **श्लोक-शेषे**—श्लोक के अन्त में; **दुइ अक्षर**—दो अक्षरों का; **पाठ**—पाठ; **फिराइला**—बदल दिया।

अनुवाद

वे श्रीमद्भागवत से ब्रह्माजी की एक स्तुति सुनाने लगे, किन्तु उन्होंने श्लोक के अन्तिम दो अक्षरों को बदल दिया।

তত্তেঽনুকম্পাং সুসমীক্ষমাণো
ভুঞ্জান এবাত্ম-কৃতং বিপাকম্ ।
হৃদ্বাগ্বপুর্ভির্বিদধন্নমস্তে
জীবেত যো ভক্তি-পদে স দায়-ভাক্ ॥২৬১॥

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्म-कृतं विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो भक्ति-पदे स दाय-भाक् ॥ २६१ ॥

तत्—अतः; **ते**—आपकी; **अनुकम्पाम्**—दया; **सुसमीक्षमाणः**—की आशा करते हुए; **भुञ्जानः**—सहन करते हुए; **एव**—निश्चित रूप से; **आत्म-कृतम्**—अपने कर्मों का; **विपाकम्**—कर्मफल; **हृत्**—हृदय से; **वाक्**—वाणी से; **वपुर्भिः**—और शरीर से; **विदधन्**—अर्पित करते हुए; **नमः**—नमस्कार; **ते**—आपको; **जीवेत**—जीवित रहे; **यः**—जो कोई; **भक्ति-पदे**—भक्ति में; **सः**—वह; **दाय-भाक्**—अधिकारी।

अनुवाद

[यह श्लोक था] "जो आपकी अनुकम्पा चाहता है और अपने विगत कर्मों से उत्पन्न सभी प्रकार की विपरीत परिस्थितियों को सहन करता है, जो मन, वचन तथा शरीर से सदैव आपकी सेवा में संलग्न रहता है और जो सदैव आपको नमस्कार करता है, वह निश्चय ही आपका अनन्य भक्त बनने का पात्र है।"

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य ने *श्रीमद्भागवत* (१०.१४.८) के इस श्लोक को पढ़ते समय *मुक्तिपदे* को बदलकर *भक्तिपदे* कर दिया। *मुक्ति* का अर्थ है मोक्ष और निर्विशेष ब्रह्मतेज में समा जाना; *भक्ति* का अर्थ है पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य सेवा करना। शुद्ध भक्ति विकसित हो जाने के कारण भट्टाचार्य को *मुक्तिपदे* शब्द नहीं भाया, जो कि भगवान् के निर्विशेष ब्रह्म पहलू का द्योतक है। किन्तु उन्हें *श्रीमद्भागवत* का एक भी शब्द बदलने का अधिकार नहीं था, जैसाकि चैतन्य महाप्रभु बतलायेंगे। यद्यपि सार्वभौम ने भक्ति के आवेश में शब्द बदल दिया था, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसकी संस्तुति नहीं की।

প্রভু কহে, 'মুক্তি-পদে'—ইহা পাঠ হয় ।
'ভক্তি-পদে' কেনে পড়, কি তোমার আশয় ॥২৬২॥

प्रभु कहे, 'मुक्ति-पदे'—इहा पाठ हय ।
'भक्ति-पदे' केने पड़, कि तोमार आशय ॥ २६२ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **मुक्ति-पदे**—"मुक्ति पदे" शब्द; **इहा**—यह; **पाठ**—पाठ; **हय**—है; **भक्ति-पदे**—"भक्ति पदे"; **केने**—क्यों; **पड़**—आप पढ़ते हो; **कि**—क्या; **तोमार**—आपका; **आशय**—आशय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त आपत्ति की, "उस श्लोक में 'मुक्तिपदे' शब्द आया है, किन्तु आपने इसे बदलकर 'भक्तिपदे' कर दिया है। आप क्या कहना चाहते हैं?"

भट्टाचार्य कहे,—'भक्ति'-सम नहे मुक्ति-फल ।
भगवद्भक्ति-विमुखेर हय दण्ड केवल ॥ २६३ ॥

भट्टाचार्य कहे,—'भक्ति'-सम नहे मुक्ति-फल ।
भगवद्भक्ति-विमुखेर हय दण्ड केवल ॥ २६३ ॥

भट्टाचार्य—सार्वभौम भट्टाचार्य ने; **कहे**—कहा; **भक्ति**—भक्ति; **सम**—समान; **नहे**—नहीं; **मुक्ति**—मुक्ति का; **फल**—फल; **भगवत्-भक्ति**—भगवद् भक्ति; **विमुखेर**—जो विमुख है; **हय**—है; **दण्ड**—दण्ड; **केवल**—केवल।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "शुद्ध भगवत्प्रेम का उदय जो भक्ति का फल है, वह भौतिक बन्धन की मुक्ति से कहीं बढ़कर है। जो भक्ति से विमुख हैं, उनके लिए ब्रह्मतेज में समा जाना एक प्रकार का दण्ड है।"

तात्पर्य

ब्रह्माण्ड-पुराण में कहा गया है :

सिद्धलोकस्तु तमसः पारे यत्र वसन्ति हि।
सिद्धा ब्रह्मसुखे मग्ना दैत्याश्च हरिणा हताः॥

"सिद्धलोक (ब्रह्मलोक) में दो प्रकार के जीव रहते हैं—वे जो पूर्वजन्मों में असुर होने के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा मारे जाते हैं तथा वे जो भगवान् के निर्विशेष तेज का भोग करना चाहते हैं।" *तमसः* शब्द का अर्थ है "ब्रह्माण्ड के आवरण।" भौतिक तत्त्वों की परतें ब्रह्माण्ड को आच्छादित करती हैं और निर्विशेष ब्रह्मतेज इन परतों के बाहर होता है। यदि कोई भगवान् के

निर्विशेष तेज में ही रहने का इच्छुक है, तो वह भगवान् की सेवा करने के अवसर से वंचित रहता है। इसीलिए भक्तगण निर्विशेष ब्रह्मतेज में समाने को एक प्रकार का दण्ड ही मानते हैं। कभी-कभी भक्तगण ब्रह्मतेज में समा जाने के विषय में सोचते हैं; अतएव वे सिद्धलोक को प्राप्त होते हैं। अपनी निर्विशेष समझ के कारण वास्तव में उन्हें दण्ड मिलता है। सार्वभौम भट्टाचार्य अगले श्लोकों में *मुक्तिपद* तथा *भक्तिपद* का अन्तर बताना जारी रखते हैं।

कृष्णेर विग्रह येई सत्य नाहि माने ।
येई निन्दा-युद्धादिक करे ताँर सने ॥ २६४ ॥
सेई दुइर दण्ड हय—'ब्रह्म-सायुज्य-मुक्ति' ।
तार मुक्ति फल नहे, येई करे भक्ति ॥ २६५ ॥

कृष्णेर विग्रह येई सत्य नाहि माने ।
येई निन्दा-युद्धादिक करे ताँर सने ॥ २६४ ॥
सेई दुइर दण्ड हय—'ब्रह्म-सायुज्य-मुक्ति' ।
तार मुक्ति फल नहे, येई करे भक्ति ॥ २६५ ॥

कृष्णेर—भगवान् श्रीकृष्ण का; **विग्रह**—दिव्य रूप; **येई**—जो कोई; **सत्य**—सत्य; **नाहि**—नहीं; **माने**—मानता; **येई**—जो कोई; **निन्दा**—निन्दा; **युद्ध-आदिक**—युद्ध आदि; **करे**—करता है; **ताँर सने**—उनके साथ (श्रीकृष्ण के साथ); **सेई**—ये; **दुइर**—दोनों को; **दण्ड हय**—दण्ड मिलता है; **ब्रह्म-सायुज्य-मुक्ति**—ब्रह्मज्योति में लीन होकर; **तार**—उसकी; **मुक्ति**—ऐसी मुक्ति; **फल**—फल; **नहे**—नहीं; **येई**—जो; **करे**—करता है; **भक्ति**—भक्ति।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने आगे कहा, "भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य रूप को न मानने वाले निर्विशेषवादी तथा भगवान् की निन्दा करने और उनसे सदैव युद्ध करने वाले असुर ब्रह्मज्योति में समाकर दण्डित होते हैं। किन्तु जो व्यक्ति भगवान् की भक्तिमयी सेवा में लगा रहता है, उसके साथ ऐसा नहीं होता।

यद्यपि से मुक्ति हय पञ्च-प्रकार ।
सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य-सार्ष्टि-सायुज्य आर ॥ २६६ ॥

यद्यपि से मुक्ति हय पञ्च-परकार ।
सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य-सार्ष्टि-सायुज्य आर ॥ २६६ ॥

यद्यपि—यद्यपि; **से**—वह; **मुक्ति**—मुक्ति; **हय**—है; **पञ्च-परकार**—पाँच प्रकार की; **सालोक्य**—सालोक्य नामक; **सामीप्य**—सामीप्य नामक; **सारूप्य**—सारूप्य नामक; **सार्ष्टि**—सार्ष्टि नामक; **सायुज्य**—सायुज्य; **आर**—और।

अनुवाद

"मुक्ति पाँच प्रकार की है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि तथा सायुज्य।

तात्पर्य

सालोक्य का अर्थ है भौतिक मुक्ति के बाद उस लोक को जाना जहाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् निवास करते हैं। *सामीप्य* का अर्थ है पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का पार्षद बनना। *सारूप्य* का अर्थ है भगवान् जैसा चतुर्भुज रूप प्राप्त करना। *सार्ष्टि* का अर्थ है भगवान् जैसा ऐश्वर्य प्राप्त करना। *सायुज्य* का अर्थ है भगवान् के ब्रह्मतेज में समा जाना। ये मुक्ति के पाँच प्रकार हैं।

'सालोक्यादि' चारि यदि हय सेवा-द्वार ।
तबु कदाचिद्भक्त करे अङ्गीकार ॥ २६७ ॥
'सालोक्यादि' चारि यदि हय सेवा-द्वार ।
तबु कदाचित्भक्त करे अङ्गीकार ॥ २६७ ॥

सालोक्य-आदि—सालोक्य आदि; **चारि**—चार प्रकार की मुक्ति; **यदि**—यदि; **हय**—है; **सेवा-द्वार**—भगवान् की सेवा करने का साधन; **तबु**—फिर भी; **कदाचित्**—कदाचित्; **भक्त**—शुद्ध भक्त; **करे**—करता है; **अङ्गीकार**—स्वीकार।

अनुवाद

"यदि शुद्ध भक्त को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा करने का अवसर मिले, तो वह कभी-कभी सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य या सार्ष्टि मुक्ति को तो स्वीकार करता है, किन्तु सायुज्य को कभी नहीं।

'सायूज्य' शुनिते भक्तेर हय घृणा-भय ।
नरक वाञ्छये, तबु सायुज्य ना लय ॥ २६८ ॥

'सायुज्य' शुनिते भक्तेर हय घृणा-भय ।
नरक वाञ्छये, तबु सायुज्य ना लय ॥ २६८ ॥

सायुज्य—ब्रह्मज्योति में लीन होकर मुक्ति; **शुनिते**—सुनने में भी; **भक्तेर**—भक्त को; **हय**—है; **घृणा**—घृणा; **भय**—भय; **नरक**—नरक; **वाञ्छये**—वह चाहता है; **तबु**—तथापि; **सायुज्य**—सायुज्य (भगवान् की ज्योति में लीन होकर); **ना लय**—नहीं स्वीकार करना।

अनुवाद

"शुद्ध भक्त तो सायुज्य मुक्ति का नाम भी सुनना नहीं चाहता, क्योंकि उससे उसे भय तथा घृणा उत्पन्न होते हैं। निस्सन्देह, शुद्ध भक्त भगवान् के तेज में समा जाने की अपेक्षा नरक जाना पसन्द करेगा।"

तात्पर्य

श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती का कथन है—*कैवल्यं नरकायते।* निर्विशेषवादियों की भगवान् के तेज के साथ एक हो जाने की धारणा नरक तुल्य है। अतएव पाँच प्रकार की मुक्तियों में से प्रथम चार (*सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य* तथा *सार्ष्टि*) उतनी अवांछनीय नहीं हैं, क्योंकि ये भगवान् की सेवा का साधन बन सकती हैं। किन्तु कृष्ण का शुद्ध भक्त इनका भी अस्वीकार कर देता है; वह तो जन्म-जन्मांतर कृष्ण की सेवा में ही लगे रहना चाहता है। वह जन्म के चक्र को रोकने का अधिक इच्छुक नहीं होता, क्योंकि वह नारकीय अवस्था में भी भगवान् की सेवा करने का इच्छुक बना रहता है। इसीलिए शुद्ध भक्त *सायुज्य* मुक्ति से घृणा करता है और उससे भयभीत रहता है। सायुज्य मुक्ति भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति के प्रति अपराध के कारण प्राप्त होती है; इसीलिए शुद्ध भक्त के लिए यह वांछनीय नहीं है।

ब्रह्मे, ईश्वरे सायूज्य दुई त' प्रकार ।
ब्रह्म-सायूज्य हैते ईश्वर-सायूज्य धिक्कार ॥ २६९ ॥
ब्रह्मे, ईश्वरे सायुज्य दुइ त' प्रकार ।
ब्रह्म-सायुज्य हैते ईश्वर-सायुज्य धिक्कार ॥ २६९ ॥

ब्रह्मे—ब्रह्मज्योति में; **ईश्वरे**—भगवान् के शरीर में; **सायुज्य**—लीन होना; **दुइ**—दोनों; **त'**—निस्सन्देह; **प्रकार**—प्रकार; **ब्रह्म-सायुज्य**—ब्रह्मज्योति में लीन होना; **हैते**—की अपेक्षा; **ईश्वर-सायुज्य**—ईश्वर के शरीर में लीन होना; **धिक्कार**—अधिक निन्दनीय है।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने आगे कहा, "सायुज्य मुक्ति दो प्रकार की है—ब्रह्मतेज में समा जाना और भगवान् के शरीर में समा जाना। भगवान् के शरीर में समा जाना तो उनके तेज में समा जाने से भी अधिक निन्दनीय है।

तात्पर्य

मायावादी वेदान्तियों के अनुसार, जीव की चरम सफलता निर्विशेष ब्रह्म में समा जाना है। निर्विशेष ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर का शारीरिक तेज ब्रह्मलोक या सिद्धलोक के नाम से विख्यात है। *ब्रह्म-संहिता* (५.४०) के अनुसार—*यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि*—भौतिक ब्रह्माण्ड पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर की किरणों से उत्पन्न होते हैं। पतंजलि के नियमों का पालन करने वाले योगी परम सत्य के व्यक्तित्व को तो मानते हैं, किन्तु वे भगवान् के दिव्य शरीर में समा जाना चाहते हैं। यही उनकी मनोकामना रहती है। भगवान् सबसे महान् अधिकारी होने के कारण लाखों जीवों को आसानी से अपने शरीर में समा जाने दे सकते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही सारी वस्तुओं के उद्गम हैं और उनका शारीरिक तेज *ब्रह्मज्योति,* ब्रह्मलोक या सिद्धलोक कहलाता है। इस तरह ब्रह्मलोक या सिद्धलोक ऐसा स्थान है, जहाँ स्फुलिंग के समान अनेक जीव एकत्र हैं, जो भगवान् के अंश हैं। चूँकि ये जीव अपना अलग अस्तित्व बनाये रखना नहीं चाहते, अतएव उन सबको मिलाकर ब्रह्मलोक में रहने दिया जाता है, जिस प्रकार सूर्य से निकलने वाली किरणों में अनेक परमाणु-कण रहते हैं।

सिद्ध शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। *सिद्ध* उस व्यक्ति का सूचक है, जिसे ब्रह्मतेज का साक्षात्कार हो चुका है और जिसे इसका पूर्ण ज्ञान होता है कि जीव भौतिक परमाणु नहीं, अपितु आध्यात्मिक स्फुलिंग है। *भगवद्गीता* में इसे *ब्रह्मभूत* कहा गया है। बद्ध अवस्था में जीव *जीवभूत* कहलाता है अर्थात् "पदार्थ के भीतर प्राण शक्ति।" ब्रह्मभूत जीवों को ब्रह्मलोक या सिद्धलोक में रहने दिया जाता है, किन्तु दुर्भाग्यवश कभी-कभी उनका भौतिक जगत् में पुनः पतन हो जाता है, क्योंकि वे भक्तिमयी सेवा में लगे हुए नहीं हैं। इसकी

पुष्टि *श्रीमद्भागवत* के श्लोक (१०.२.३२) द्वारा की गई है—*येऽन्येऽरविन्दाक्ष।* ये आधे मुक्त जीव मुक्त होने का झूठा दावा करते हैं, किन्तु जब तक भगवान् की भक्तिमयी सेवा नहीं की जाती, तब तक जीव भौतिक रूप में दूषित बना रहता है। इसीलिए ये जीव *विमुक्तमानिनः* कहे गये हैं, जिसका अर्थ यह है कि वे अपने आपको भ्रान्तिवश मुक्त मानते हैं, यद्यपि उनकी बुद्धि अभी भी निर्मल नहीं हुई है। यद्यपि ये जीव सिद्धलोक तक पहुँचने के लिए कठिन तपस्या करते हैं, किन्तु वे वहाँ स्थायी रूप से नहीं रह सकते, क्योंकि वे *आनन्द* से विहीन होते हैं। ये जीव *ब्रह्मभूत* स्थिति पर होने पर भी तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शारीरिक तेज के रूप में भगवत्-साक्षात्कार करने पर भी भगवान् की सेवा की उपेक्षा करने के कारण नीचे गिर जाते हैं। उन्हें पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् के विषय में जो थोड़ा-बहुत ज्ञान होता है, उसका वे ठीक से उपयोग नहीं कर पाते। आनन्द से वंचित रहने के कारण वे भौतिक जगत् का भोग करने के लिए नीचे आ जाते हैं। यह अवश्य ही मुक्त लोगों के लिए पतन है। भक्तगण ऐसे पतन को नरक जाने के समान मानते हैं।

पतंजलि योग के अनुयायी वास्तव में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर में समा जाना चाहते हैं। इसका अर्थ यह है कि वे भगवान् के विषय में जानते हुए भी उनकी सेवा नहीं करना चाहते। अतएव इनकी स्थिति तो उनसे भी बदतर है, जो भगवान् के तेज में समा जाना चाहते हैं। ये योगी भगवान् के शरीर में समा जाने हेतु भगवान् विष्णु के चतुर्भुज रूप पर ध्यान करते हैं। पतंजलि-पद्धति में भगवान् के स्वरूप को—*क्लेश-कर्म-विपाकाशयैर परामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः* कहा गया है, अर्थात् "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ऐसे व्यक्ति हैं, जो कष्टमय भौतिक जीवन के भागी नहीं होते।" योगीजन अपने मन्त्र में परम पुरुष की शाश्वतता को स्वीकार करते हैं—*स पूर्वेषामपि गुरुः कालानवच्छेदात्* अर्थात् "ऐसा व्यक्ति सर्वोच्च होता है और काल के द्वारा प्रभावित नहीं होता।" इस तरह पतंजलि-पद्धति के अनुयायी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शाश्वतता को स्वीकार करते हैं तथापि उनके अनुसार—*पुरुषार्थशून्यानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।* वे मानते हैं कि सिद्ध अवस्था में *पुरुष* की धारणा का लोप हो जाता है। उनके वर्णन के अनुसार *चितिशक्तिरिति।* उनका

विश्वास है कि पूर्ण बन जाने पर कोई भी पुरुष नहीं बना रह सकता। यह योग-पद्धति इसीलिए निन्दनीय है, क्योंकि इसकी अन्तिम धारणा निर्विशेष है। ये योगी प्रारम्भ में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को मानते हैं, किन्तु अन्त में निर्विशेष बनने के लिए वे इस विचार को त्याग देते हैं। ये सबसे बड़े अभागे हैं, क्योंकि परम सत्य की साकार धारणा से अवगत होते हुए भी वे भगवान् की भक्तिमयी सेवा की उपेक्षा करते हैं और इस तरह पुनः इस भौतिक जगत् में आ गिरते हैं। जैसा ऊपर कहा गया है, इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* (१०.२.३२) द्वारा होती है—*आरुह्याकृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः*—भगवान् के चरणकमलों की उपेक्षा करने के कारण ये योगी पुनः भौतिक जगत् में आ गिरते हैं (*पतन्त्यधः*)। अतएव योग का यह मार्ग निर्विशेषवादियों के मार्ग से भी बदतर है। इसकी पुष्टि भगवान् कपिलदेव के कथन से भी होती है, जो *श्रीमद्भागवत* के निम्नलिखित श्लोक (३.२९.१३) में व्यक्त हुआ है।

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥२७०॥

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ २७० ॥

सालोक्य—भगवान् के लोक में रहने की मुक्ति; **सार्ष्टि**—भगवान् जैसा ऐश्वर्य प्राप्त करना; **सामीप्य**—सदा भगवान् की संगति में रहना; **सारूप्य**—भगवान् के जैसे शरीर को प्राप्त करना; **एकत्वम्**—भगवान् के शरीर में लीन हो जाना; **अपि**—यद्यपि; **उत**—कहा जाता है; **दीयमानम्**—दी जाती है; **न**—नहीं; **गृह्णन्ति**—स्वीकार करता; **विना**—बिना; **मत्**—मेरी; **सेवनम्**—सेवा; **जनाः**—शुद्ध भक्त।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने अन्त में कहा, "'समस्त प्रकार की मुक्तियाँ प्रदान किये जाने पर भी शुद्ध भक्त उन्हें स्वीकार नहीं करता। वह भगवान् की सेवा में लगे रहने से ही सन्तुष्ट रहता है।'"

प्रभु कहे,—'मुक्ति-पदे'र आर अर्थ हय ।
मुक्ति-पद-शब्दे 'साक्षातीश्वर' कहय ॥२७१॥

प्रभु कहे,—'मुक्ति-पदे'र आर अर्थ हय ।
मुक्ति-पद-शब्दे 'साक्षातीश्वर' कहय ॥ २७१ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **मुक्ति-पदेर**—'मुक्ति पदे' का; **आर**—अन्य; **अर्थ**—अर्थ; **हय**—है; **मुक्ति-पद-शब्दे**—'मुक्तिपद' शब्द से; **साक्षात्**—प्रत्यक्ष; **ईश्वर**—ईश्वर; **कहय**—कहे जाते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मुक्ति-पदे" शब्द का अन्य अर्थ है। "मुक्ति-पद" साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का द्योतक है।

मुक्ति पदे याँर, सेइ 'मुक्ति-पद' हय ।
किम्वा नवम पदार्थ 'मुक्तिर' समाश्रय ॥२७२॥

मुक्ति पदे याँर, सेइ 'मुक्ति-पद' हय ।
किम्वा नवम पदार्थ 'मुक्तिर' समाश्रय ॥ २७२ ॥

मुक्ति—मुक्ति; **पदे**—चरणकमलों में; **याँर**—जिनके; **सेइ**—ऐसा व्यक्ति; **मुक्ति-पद हय**—'मुक्ति पद' कहा जाता है; **किम्वा**—अथवा; **नवम**—नौवाँ; **पद-अर्थ**—पदार्थ; **मुक्तिर**—मुक्ति का; **समाश्रय**—आश्रय।

अनुवाद

"चूँकि सभी प्रकार की मुक्तियाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों में विद्यमान रहती हैं, अतएव वे मुक्तिपद कहे जाते हैं। एक अन्य अर्थ के अनुसार मुक्ति नौवाँ विषय है और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मुक्ति के आश्रय हैं।

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण मुकुन्द भी कहलाते हैं, जिसका अर्थ है समस्त प्रकार की मुक्तियाँ प्रदान करके दिव्य आनन्द प्रदान करने वाले। *श्रीमद्भागवत* में बारह स्कन्ध हैं, जिनमें से नवें स्कन्ध में विभिन्न प्रकार की मुक्तियों का वर्णन है। किन्तु दसवाँ स्कन्ध मुक्ति की व्याख्याओं का वास्तविक केन्द्र है, क्योंकि भगवान् कृष्ण *श्रीमद्भागवत* में जिनकी चर्चा की गई है, उन विषयों में दसवें विषय हैं। चूँकि सभी प्रकार की मुक्तियाँ श्रीकृष्ण के चरणकमलों में वास करती हैं, अतएव वे *मुक्तिपद* कही जा सकती हैं।

दुइ-अर्थे 'कृष्ण' कहि, केने पाठ फिरि ।
सार्वभौम कहे,—ओ-पाठ कहिते ना पारि ॥२७३॥

दुइ-अर्थे 'कृष्ण' कहि, केने पाठ फिरि ।
सार्वभौम कहे,—ओ-पाठ कहिते ना पारि ॥ २७३ ॥

दुइ-अर्थे—दो अर्थों से; **कृष्ण**—भगवान् श्रीकृष्ण; **कहि**—मैं स्वीकार करता हूँ; **केने**—क्यों; **पाठ**—पाठ; **फिरि**—बदलूँ; **सार्वभौम कहे**—सार्वभौम ने उत्तर दिया; **ओ-पाठ**—ऐसा पाठ; **कहिते**—कहना; **ना**—नहीं; **पारि**—समर्थ हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "चूँकि मैं इन दोनों अर्थों से श्रीकृष्ण को समझ सकता हूँ, तो फिर श्लोक को बदलने से क्या लाभ?" सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "मैं इस श्लोक का वह पाठ नहीं कर पा रहा था।

यद्यपि तोमार अर्थ एइ शब्दे कय ।
तथापि 'आश्लिष्य-दोषे' कहन ना याय ॥२७४॥

यद्यपि तोमार अर्थ एइ शब्दे कय ।
तथापि 'आश्लिष्य-दोषे' कहन ना याय ॥ २७४ ॥

यद्यपि—यद्यपि; **तोमार**—आपका; **अर्थ**—अर्थ; **एइ**—यह; **शब्दे**—शब्द से; **कय**—कहा जाता है; **तथापि**—तथापि; **आश्लिष्य-दोषे**—अस्पष्टता के दोष से; **कहन**—कहना; **ना**—नहीं; **याय**—सम्भव।

अनुवाद

"यद्यपि आपकी व्याख्या सही है, किन्तु 'मुक्तिपद' पद में असमंजसता होने के कारण इसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

यद्यपि 'मुक्ति'-शब्देर हय पञ्च वृत्ति ।
रूढ़ि-वृत्त्ये कहे तबु 'सायुज्ये' प्रतीति ॥२७५॥

यद्यपि 'मुक्ति'-शब्देर हय पञ्च वृत्ति ।
रूढ़ि-वृत्त्ये कहे तबु 'सायुज्ये' प्रतीति ॥ २७५ ॥

यद्यपि—यद्यपि; **मुक्ति-शब्देर**—मुक्ति शब्द के; **हय**—हैं; **पञ्च वृत्ति**—पाँच अर्थ;

रूढ़ि-वृत्त्ये—मुख्य अर्थ से; **कहे**—यह कहता है; **तबु**—फिर भी; **सायुज्ये**—परम के साथ एक हो जाना; **प्रतीति**—प्रतीत होता है।

अनुवाद

"'मुक्ति' शब्द पाँच प्रकार की मुक्तियों का द्योतक है। किन्तु सामान्यतया इसका मुख्य अर्थ सायुज्य की प्रतीति है।

मुक्ति-शब्द कहिते मने हय घृणा-त्रास ।
भक्ति-शब्द कहिते मने हय त' उल्लास ॥२७६॥

मुक्ति-शब्द कहिते मने हय घृणा-त्रास ।
भक्ति-शब्द कहिते मने हय त' उल्लास ॥ २७६ ॥

मुक्ति-शब्द—'मुक्ति' शब्द; **कहिते**—कहने से; **मने**—मन में; **हय**—होती है; **घृणा**—घृणा; **त्रास**—और भय; **भक्ति-शब्द**—भक्ति शब्द; **कहिते**—कहने से; **मने**—मन में; **हय**—होता है; **त'**—निस्सन्देह; **उल्लास**—दिव्य आनन्द।

अनुवाद

"'मुक्ति' शब्द की ध्वनि मात्र से मन में घृणा तथा भय का भाव उत्पन्न होता है, किन्तु जब हम 'भक्ति' शब्द कहते हैं, तो हमारे मन में दिव्य आनन्द की सहज अनुभूति होती है।"

शुनिया हासेन प्रभु आनन्दित-मने ।
भट्टाचार्य कैल प्रभु दृढ़ आलिङ्गने ॥२७७॥

शुनिया हासेन प्रभु आनन्दित-मने ।
भट्टाचार्य्य कैल प्रभु दृढ़ आलिङ्गने ॥ २७७ ॥

शुनिया—यह व्याख्या सुनकर; **हासेन**—हँसते हैं; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **आनन्दित-मने**—मन में अत्यन्त आनन्दित होकर; **भट्टाचार्य्य**—सार्वभौम भट्टाचार्य को; **कैल**—किया; **प्रभु**—महाप्रभु; **दृढ़**—दृढ़; **आलिङ्गने**—आलिङ्गन।

अनुवाद

यह व्याख्या सुनकर महाप्रभु हँसने लगे और तुरन्त ही उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक भट्टाचार्य का दृढ आलिंगन किया।

যেই ভট্টাচার্য পড়ে পড়ায় মায়াবাদে ।
তাঁর ঐছে বাক্য স্ফুরে চৈতন্য-প্রসাদে ॥২৭৮॥

যেই ভট্টাচার্য্য পড়ে পড়ায় মায়াবাদে ।
তাঁর ঐছে বাক্য স্ফুরে চৈতন্য-প্রসাদে ॥ ২৭৮ ॥

যেই—वह; **ভট্টাচার্য্য**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **পড়ে**—पढ़ते; **পড়ায়**—पढ़ाते; **মায়াবাদে**—मायावाद शून्यवाद दर्शन; **তাঁর**—उसकी; **ঐছে**—ऐसी; **বাক্য**—व्याख्या; **স্ফুরে**—प्रकट होती है; **চৈতন্য-প্রসাদে**—चैतन्य महाप्रभु की कृपा से।

अनुवाद

जो व्यक्ति मायावाद-दर्शन पढ़ने और पढ़ाने का अभ्यस्त था, वही अब "मुक्ति" शब्द से घृणा कर रहा था। यह सब केवल श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से ही सम्भव हुआ।

লোহাকে যাবত্স্পর্শি' হেম নাহি করে ।
তাবত্স্পর্শ-মণি কেহ চিনিতে না পারে ॥২৭৯॥

লোহাকে যাবত্স্পর্শি' হেম নাহি করে ।
তাবত্স্পর্শ-মণি কেহ চিনিতে না পারে ॥ ২৭৯ ॥

লোহাকে—लोहा; **যাবত্**—जब तक; **স্পর্শি'**—स्पर्श करने से; **হেম**—सोना; **নাহি**—नहीं; **করে**—परिवर्तित हो जाता; **তাবত্**—तब तक; **স্পর্শ-মণি**—चिन्तामणि; **কেহ**—कोई; **চিনিতে**—पहचानने में; **না**—नहीं; **পারে**—सक्षम है।

अनुवाद

जब तक स्पर्शमणि लोहे को अपने स्पर्श से सोना न बना दे, तब तक कोई भी व्यक्ति किसी अज्ञात पत्थर को स्पर्शमणि के रूप में नहीं जान सकता।

ভট্টাচার্যের বৈষ্ণবতা দেখি' সর্ব-জন ।
প্রভুকে জানিল—'সাক্ষাত্ব্রজেন্দ্র-নন্দন' ॥২৮০॥

ভট্টাচার্য্যের বৈষ্ণবতা দেখি' সর্ব-জন ।
প্রভুকে জানিল—'সাক্ষাত্ত্রজেন্দ্র-নন্দন' ॥ ২৮০ ॥

ভট্টাচার্য্যের—सार्वभौम भट्टाचार्य का; **বৈষ্ণবতা**—वैष्णव धर्म की स्पष्ट समझ; **দেখি'**—देखकर; **সর্ব-জন**—सभी व्यक्ति; **প্রভুকে**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; **জানিল**—जान गये; **সাক্ষাত্**—साक्षात्; **ব্রজেন্দ্র-নন্দন**—महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य की दिव्य वैष्णवता देखकर हर व्यक्ति यह जान सका कि चैतन्य महाप्रभु नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हैं।

কাশী-মিশ্র-আদি যত নীলাচল-বাসী ।
শরণ লইল সবে প্রভু-পদে আসি' ॥২৮১॥

কাশী-মিশ্র-আদি যত নীলাচল-বাসী ।
শরণ লইল সবে প্রভু-পদে আসি' ॥ ২৮১ ॥

কাশী-মিশ্র—काशी मिश्र; **আদি**—आदि; **যত**—सबके; **নীলাচল-বাসী**—नीलाचल वासी (जगन्नाथ पुरी के निवासी); **শরণ**—शरण; **লইল**—ली; **সবে**—सबने; **প্রভু-পদে**—महाप्रभु के चरणकमलों की; **আসি'**—आकर।

अनुवाद

इस घटना के बाद काशीमिश्र आदि जगन्नाथ पुरी के सारे निवासी महाप्रभु के चरणकमलों की शरण में आ गये।

সেই সব কথা আগে করিব বর্ণন ।
সার্বভৌম করে যৈছে প্রভুর সেবন ॥২৮২॥

সেই সব কথা আগে করিব বর্ণন ।
সার্বভৌম করে যৈছে প্রভুর সেবন ॥ ২৮২ ॥

সেই সব—ये सब; **কথা**—कथाएँ; **আগে**—आगे; **করিব**—वर्णन करूँगा; **বর্ণন**—वर्णन; **সার্বভৌম**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **করে**—करते हैं; **যৈছে**—जैसे; **প্রভুর**—महाप्रभु की; **সেবন**—सेवा।

अनुवाद

मैं इसका वर्णन बाद में करूँगा कि सार्वभौम भट्टाचार्य किस प्रकार महाप्रभु की सेवा में सदा लगे रहते थे।

यैछे परिपाटी करे भिक्षा-निर्वाहन ।
विस्तारिया आगे ताहा करिब वर्णन ॥२८३॥

ग्रैछे परिपाटी करे भिक्षा-निर्वाहन ।
विस्तारिया आगे ताहा करिब वर्णन ॥ २८३॥

ग्रैछे—कैसे; **परिपाटी**—पूर्णरूपेण; **करे**—करते हैं; **भिक्षा**—भिक्षा देने का; **निर्वाहन**—कार्य; **विस्तारिया**—विस्तार करके; **आगे**—आगे; **ताहा**—वह; **करिब वर्णन**—मैं वर्णन करूँगा।

अनुवाद

मैं इसका भी विस्तार से वर्णन करूँगा कि किस तरह सार्वभौम भट्टाचार्य ने भिक्षा देकर श्री चैतन्य महाप्रभु की सम्यक् सेवा की।

एइ महाप्रभुर लीला—सार्वभौम-मिलन ।
इहा येइ श्रद्धा करि' करये श्रवण ॥२८४॥
ज्ञान-कर्म-पाश हैते हय विमोचन ।
अचिरे मिलये ताँरे चैतन्य-चरण ॥२८५॥

एइ महाप्रभुर लीला—सार्वभौम-मिलन ।
इहा ग्रेइ श्रद्धा करि' करये श्रवण ॥ २८४॥
ज्ञान-कर्म-पाश हैते हय विमोचन ।
अचिरे मिलये ताँरे चैतन्य-चरण ॥ २८५॥

एइ—यह; **महाप्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **लीला**—लीला; **सार्वभौम-मिलन**—सार्वभौम भट्टाचार्य से मिलाप; **इहा**—यह; **ग्रेइ**—जो कोई; **श्रद्धा**—श्रद्धा; **करि'**—करके; **करये**—करता है; **श्रवण**—श्रवण; **ज्ञान-कर्म**—ज्ञान तथा सकाम कर्म के; **पाश**—जाल; **हैते**—से; **हय**—होता है; **विमोचन**—विमोचन; **अचिरे**—शीघ्र; **मिलये**—मिलता है; **ताँरे**—ऐसा भक्त; **चैतन्य-चरण**—चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल को।

अनुवाद

यदि कोई व्यक्ति श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु के मिलन से सम्बन्धित इन लीलाओं को सुनता है, तो वह तुरन्त ही मानसिक तर्कवितर्क तथा सकाम कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है और श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त करता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥२८६॥

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे ग्यार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ २८६॥

श्री-रूप—श्रील रूप गोस्वामी; **रघुनाथ**—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; **पदे**—के चरणकमलों में; **ग्यार**—जिसकी; **आश**—आशा; **चैतन्य-चरितामृत**—चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; **कहे**—कहता है; **कृष्णदास**—श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

मैं कृष्णदास श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर *श्री चैतन्य-चरितामृत* का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के छठे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें सार्वभौम भट्टाचार्य की मुक्ति का वर्णन हुआ है।